जागोरी की पत्रिका
अक्टूबर 2017-सितम्बर 2018

हम सबला

इस अंक में
महिला सम्पत्ति
अधिकार

हम सबला

अक्टूबर 2017-सितम्बर 2018

अतिथि संपादक
कमला भसीन

संपादन एवं अनुवाद
ममता पाठक

समन्वयन
नीतू रौतेला

बोर्ड सदस्य
शर्मिला भगत
वीना शिवपुरी
सीमा श्रीवास्तव
जया श्रीवास्तव
अनामिका

सलाहकार
गीता नाम्बीसन
विभूति पटेल
नस्तासिया

सहयोग
सहबा सईद, प्रणाली पांजरेकर
अरिवम अवेन, अलका ओबेराय

फोटो/चित्रांकन साभार
कवर फोटोः संगत, जागोरी
अन्यः प्रदान, कंचन प्रकाश, मकाम
बिंदिया थापर

डिज़ाइन व मुद्रण
यशवंत रावत, प्रिन्टफोर्स • 9958392130
rawatys2011@gmail.com

कॉपीराइट कानून के तहत 'हम सबला' प्रकाशन के सर्वाधिकार जागोरी के पास सुरक्षित हैं। लिखित अनुमति के लिए सम्पर्कः jagori@jagori.org

डिस्क्लेमरः इस प्रकाशन में शामिल लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के निजी हैं और जागोरी की आधिकारिक नीतियों और दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से नहीं दर्शाते। प्रकाशन में शामिल जानकारी के चयन पर अंतिम निर्णय संपादक-मंडल का होगा।

केवल सीमित वितरण के लिए

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेलः humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइटः www.jagori.org
दूरभाषः 26691219, 26691220
हेल्पलाइनः 26692700

इस अंक में

हमारी बात — ममता पाठक — 1

अतिथि की कलम से — कमला भसीन, मीनल — 2

लेख

महिलाओं के मकान और ज़मीन से जुड़े अधिकार	विभूति पटेल	4
हिन्दू कोड बिल का इतिहास	सुधा अरोड़ा	8
स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार और बाबा साहेब	रजनी तिलक	10
भारतीय महिलाओं का सम्पत्ति अधिकार	सुजाता चौहान	13
महिला सम्पत्ति अधिकारः पूर्वोत्तर के संदर्भ में	रौशमी गोस्वामी	15
सम्पत्ति अधिकारः मिथक और वास्तविकता	गायत्री शर्मा	18
महिला सम्पत्ति अधिकारः एक छलावा	फ्लेविया एग्निस	21
स्त्री को माना सामान, भला सामान की स्वतंत्रता	मैत्रेयी पुष्पा	27
जायदाद के सवाल पर मर्दों में एकता है!	शीबा असलम फहमी	33

कहानी

मेरा कमरा और शहतूत का पेड़	हेमलता यादव	24
समानता की राह पर	कुलीना कुमारी	37

कविता

घर मेरा नहीं!	ममता पाठक	7
जायदाद बिना न रहेंगे	कमला भसीन	12
मैं भी हूं किसान	विनय और चारुल	20
बेटी का हिस्सा	रीता गुप्ता	28
अधिकार तुम्हारा कैसे	रेवा चौबे	34
बेघर अब न रहेंगे	कमला भसीन	36
राखी बांधकर लौटती बहनें	सुधा अरोड़ा	42
जायदाद औरतें भी पाएं	कमला भसीन	51

संघर्ष और जीत

संघर्ष जिन्होंने इतिहास रचा	बीना अग्रवाल	39
घर दोनों का	मनीषा गुप्ते	43
कृषि भूमि पर ग्रामीण महिलाओं के विरासत अधिकार	नेबरून सेन गुप्ता	45
संगठित हो एकल महिलाएं हासिल कर रही अपने अधिकार	मकाम	47

साक्षात्कार

महिला हिंसा का कारण हैः सम्पत्ति	ममता पाठक	35

संगोष्ठी

महिला सम्पत्ति अधिकार पर संगोष्ठी की एक झलक	मीनल	49

संघर्ष हमारा नारा

मैंने ठाना है सम्पत्ति में हक़ पाना है	सुनीता	52
लड़ाई जारी है	यूसुफ बेग	53
मज़बूत इरादों से बना एक कच्चा घर	अर्चना	54
लड़ी लड़ाई फिर जीत पाई	नोरती	56

पहल

क्या किया जाना चाहिए?	बीना अग्रवाल	57
मैं प्रतिज्ञा करती हूं	आरती पांडेय	58
पुस्तक समीक्षा	डॉ. शरद कुमार पाण्डेय	59

हमारी बात

हम सभी जानते हैं कि मकान और ज़मीन एक ऐसी सम्पत्ति है जो परिवार में, समाज में व्यक्ति की स्थिति मज़बूत करती है। साथ ही यह बात भी उतनी ही सच है कि सारी दुनिया में मकान और ज़मीन का अधिकार अधिकांश पुरुषों के हिस्से आता है और महिलाओं को इससे वंचित रखा जाता है। इसका कारण है पितृसत्ता, जिसमें महिलाओं को सशक्त व मजबूत करने या देखे जाने की व्यवस्था नहीं है। यही कारण है कि आधी आबादी असहाय और असमर्थ स्थिति में है। हालांकि सरकार समय-समय पर या यूं कहें बड़ी संख्या में मांग होने पर क़ानून बनाती है या क़ानून में संशोधन करती है। इन्हीं क़ानूनों में से एक है हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005।

इस क़ानून को आए एक दशक से ऊपर हो चुका है लेकिन महिलाओं के मकान और ज़मीन के अधिकारों में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया है। 'सेंटर फॉर इक्विटी स्ट्डीज' की रिपोर्ट 2016 कहती है कि आज भी दलित आदिवासी अल्पसंख्यक और महिलाएं सार्वजनिक संसाधनों से वंचित है। जिसमें दलित समुदाय की स्थिति सबसे ऊपर है। लगभग 57.3 प्रतिशत दलित भूमिहीन है। वहीं महिलाओं का प्रतिशत 56.8 है। इसके पहले 2011 की जनगणना रिपोर्ट की स्थिति तो और चौंकाने वाली थी। जिसके अनुसार महिलाओं का भूमि पर मालिकाना हक़ मात्र 13 प्रतिशत था। अपने देश में महिलाओं को ज़मीन-जायदाद से दूर रखने के लिए लड़कियों को कोख में मारने से लेकर डायन, चुड़ैल की संज्ञाए देकर उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। परिवार व समाज में स्थित जेंडर आधारित यह असमानता महिलाओं व समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। अतः आवश्यक है कि क़ानूनी व सामाजिक रूप से महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों को सुनिश्चित किया जाए।

परन्तु प्रशासनिक स्तर पर भी लोग यह कहते नज़र आते है कि लड़कियां स्वयं अपने अधिकारों की मांग नहीं करती। मगर प्रशासन इनके पीछे छिपे कारणों को समझने का प्रयास नहीं करता। जिस समाज में लड़कियों को बचपन से यह समझाया जाता है कि "घर का मालिक भाई होगा, तुम तो पराई हो", ऐसे में लड़कियों के मन में बैठी संस्कार रूपी पुलिस हमेशा उन्हें अपने अधिकारों पर बात करने से रोकती है। इन परिस्थितियों में सरकार और प्रशासन की ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है कि वे क़ानून बनाने के साथ क़ानून लागू करने की भी रणनीति बनाएं। जानकारी का प्रचार-प्रसार हो, महिलाओं को अपने अधिकारों की जानकारी हो, यह भी पता हो कि आवश्यकता पड़ने पर वे कहां, कैसे और कब आवेदन या शिकायत कर सकती हैं। उत्तराधिकार क़ानून 2005 औरतों पर होने वाली हिंसा पर लगाम लगाने का एक सशक्त माध्यम है। लेकिन इसकी एक समस्या है कि यह केन्द्र और राज्य मे एक जैसा नहीं है। इसी कारण कई राज्यों में अब तक लागू ही नहीं हुआ। अतः इस क़ानून का दायरा बढ़ाया जाना चाहिए, जिससे सभी वर्ग की महिलाओं तक इसका लाभ पहुंचे तभी प्राकृतिक न्याय का रास्ता खुलेगा। अधिकारों तक पहुंच बनाए बिना हम समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न साकार नहीं कर सकते।

इन्हीं सब मुद्दों को देखते हुए, इस बार 'हम सबला' का यह अंक 'महिला सम्पत्ति अधिकार' विषय पर केन्द्रित है। जिसमें हम लेख, कहानी, कविता, संवाद आदि, लेखन की विविध विधाओं के माध्यम से इस विषय के तमाम पहलुओं पर बात करेंगे। हम उम्मीद करते है, 'हम सबला' का यह अंक हमारे पाठकों को समझ की एक नई रौशनी देगा।

ममता पाठक

अतिथि की कलम से...

समस्या एक, रूप अनेक

कमला भसीन

लड़कियों और औरतों को कमज़ोर, डरपोक, अपवित्र बताने और बनाने के लिए पितृसत्ता बहुत चालें चलती है। यह पितृसत्ता की चाल और साज़िश है कि बेटियों को पराया धन माना और कहा जाए, उन्हें बोझ माना जाए। उनके पैदा होने तक को अपशकुन, दुःख की ख़बर माना जाता है। आजीवन उनके साथ भेदभाव किया जाता है। वयस्क होने पर परिवार की सम्पत्ति नहीं दी जाती। लड़कियों का अपना नाम तक नहीं होता। शादी से पहले पिता का नाम और पिता जब चाहे "कन्यादान" करा के गंगा नहा ले। बेटी अपने नए मालिक, पति, स्वामी, मजाज़ी ख़ुदा की हो जाए। नए मालिक का नाम, घर, तौर-तरीके अपनाने को मजबूर।

अगर बेटियों का अपने परिवार की सम्पत्ति पर कोई अधिकार न हो और न ही स्वनिर्भर होने, खुद कमा कर खाने और रहने के हुनर उन्हें सिखाए जाएं तो हर लड़की के लिए शादी ज़रूरी हो जाती है। इस सबके चलते लड़कियों की जड़ें नहीं होतीं। उनमें आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, हिम्मत, हौसला पनप ही नहीं पाता। बिना जड़ों की पर-जीवी लताएं जीने और खड़े होने के लिए पेड़ ढूंढ़ती रहती हैं। सदा दूसरों पर आश्रित। किसी न किसी मर्द के सहारे के बिना वो खड़ी नहीं हो सकतीं, जी नहीं सकतीं। मर्दों के हुकुम बजाती रहती हैं। स्वराज, स्वतंत्रता, आज़ादी का वे सोच भी नहीं सकतीं।

निजी सम्पत्ति में पितृसत्ता की जड़ें

चूंकि लड़कियों और औरतों की अपनी सम्पत्ति नहीं होती, वे खुद औरों की सम्पत्ति बन कर रह जाती हैं। निजी सम्पत्ति और पितृसत्ता का बहुत ही पुराना और पेचीदा रिश्ता है। साम्यवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स व ऐंगल्स के अनुसार पितृसत्ता की जड़ें निजी सम्पत्ति में हैं। उनका मानना था कि कई हज़ार साल पहले, सभ्यता के जन्म से पूर्व जब पूरी धरती सभी इंसानों की थी, और सभी बच्चों का पालन समूह किया करते थे, तब पितृसत्ता, विवाह और परिवार नहीं थे। जब इंसानों ने प्रकृति पर नियंत्रण शुरू किया, ज़मीन पर दावा करना शुरू किया, जानवर पाले और दास बनाये तब यह सवाल उठा कि उनके मरने के बाद यह सम्पत्ति किसकी होगी? इस सवाल का जवाब ही पितृसत्ता का आधार बना। पुरुषों को पता ही नहीं होता कि उनके बच्चे कौन हैं। यह सिर्फ़ मां को पता होता है। पुरुषों को तभी पता लग सकता है जब वे औरतों को बंदी बना लें और कोई अन्य पुरुष उनके साथ यौन संबंध न बनाए। निजी सम्पत्ति के कारण ही पितृसत्ता शुरू हुई।

ज़रा ग़ौर से सोचिये, क्या फ़र्क़ है उस प्राचीन आदमी और आज के समाज की सोच में? आज भी बेटी को अपने ही घर में पराये घर की अमानत की तरह पाला जाता है। यह विचार धीरे-धीरे समाज व परिवार में औरत को अस्तित्वविहीन और दूसरों पर निर्भर बना देता है।

क़ानूनी अधिकार

आज भले ही हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 के अनुसार हिन्दू (सिक्ख, बौद्ध और जैन) धर्म में बेटियों का पारिवारिक सम्पत्ति पर उतना ही अधिकार है जितना बेटों का। इसके अलावा संयुक्त परिवार में भी सम्पत्ति पर बेटियों को बेटों के बराबर के अधिकार हैं। 2005 के पूर्व शादीशुदा महिलाओं का अपने मायके में क़ानूनी रूप से रहने का अधिकार भी नहीं था। क़ानून भी महिलाओं का असल घर ससुराल को ही मानता था। 2005 में इसको बदला गया और शादी के बाद भी बेटियों को मायके की सम्पत्ति में बराबर के अधिकार दिए गए। मां के घर वापस जाने का यह अधिकार विवाह में घरेलू हिंसा से शोषित औरतों के लिए राहत के रूप में आया। बीना अग्रवाल (जिनके नेतृत्व में 2005 में

क़ानून बदलने का अभियान चला) ने केरल में एक शोध किया जिसमें ये बात सामने आई कि सम्पत्तिहीन महिलाएं अधिकतर घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। 49 प्रतिशत महिलायें घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। इससे यह साबित होता है कि सम्पत्ति पर अधिकार न केवल महिलाओं को एक अपमानजनक और हिंसात्मक विवाह छोड़ने का विकल्प देता है लेकिन उन पर होती हिंसा पर रोक भी लगाता है। यह मुद्दा विभिन्न रूपों में हर वर्ग जाति और धर्म की महिलाओं को प्रभावित करता है।

पिछले साल, एन.डी.टी.वी (NDTV) की एक पत्रकार राधिका बोर्डिया ने हमें एक आश्चर्यचकित करने वाली बात बताई। अपनी एक कहानी के लिए वे कुछ युवतियां ढूंढ रहीं थी जो कैमरे के सामने यह बतायें कि उनके माता पिता ने उन्हें पारिवारिक सम्पत्ति में हिस्सा दिया या नहीं दिया। ताज्जुब की बात यह थी कि पूरे दिल्ली शहर में उन्हें एक भी ऐसी महिला नहीं मिली। महिला आंदोलन के लम्बे संघर्ष और उससे मिली प्रगति के बाद भी आज की पढ़ी-लिखी युवतियां सम्पत्ति पर अपने अधिकार के बारे में खुल कर बात करने से कतराती हैं, यह जितनी आश्चर्य की बात है उतनी ही निराशाजनक भी है।

आदिवासी समुदाय की औरतों के लिए जंगल ही जीविका का स्त्रोत है और क़ानून इन्हें वह अधिकार देता भी है लेकिन विकास के नाम पर सरकारें जंगलों की ज़मीन पूंजीवादी कम्पनियों को बेच रही है। विधवा महिलाओं का हाल तो सबसे दयनीय है। उनके पास भी पति की सम्पत्ति पर अधिकार हैं लेकिन ज़्यादातर औरतों को यह पता ही नहीं होता। पता होने पर भी परिवार में निंदा के भय से वे चुप रहती हैं और पुरुष रिश्तेदारों की मेहरबानी पर सारा जीवन काटती हैं। आजकल कई प्रदेशों की सरकारें महिलाओं के नाम पर योजनाएं चला रही हैं जैसे कि झारखण्ड में महिला के नाम से सम्पत्ति खरीदने पर पंजीकरण शुल्क 1 रुपया हो गया है। इन योजनाओं का फ़ायदा महिलाओं तक पहुंचता ही नहीं है। उस ज़मीन पर उनका न नियंत्रण होता है और न भूमि से हुई कमाई का प्रत्यक्ष लाभ होता है।

समाज में महिलाओं का एक खंड ऐसा भी है जिन्हें अभी भी क़ानूनी रूप से बराबरी हासिल नहीं है, जैसे मुसलमान औरतें। इस्लाम वह पहला धर्म था जिसने महिलाओं को तब अधिकार दिये जब किसी और धर्म ने नहीं दिये। आज शरीयत के हिसाब से बेटियों के पास सम्पत्ति पर अधिकार तो हैं पर बेटों के बराबर नहीं। समस्या यह भी है कि जहां क़ानून अधिकार देता भी है तो समाज स्वीकार नहीं करता। हिन्दू लड़कियों को दहेज देकर विदा कर दिया जाता है। जो बेटी हिम्मत कर अपना हिस्सा मांग भी ले तो उसे बुरा भला कहा जाता है, समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है, समझा जाता है कि लड़की ने परिवार की नाक कटा दी।

इन सब बातों ने हमारे मन में सम्पत्ति पर महिलाओं के अधिकार के लिए एक अभियान के बीज बोये। जागोरी व एक्शन एड के साथ मिल कर संगत ने मई, 2017 में दो दिवसीय सम्मलेन का आयोजन किया जिसमें इस मुद्दे पर काम करने वाले 60 शिक्षाविद, सामाजिक कार्यकर्ता, वकील और मीडिया के प्रतिनिधि शामिल हुये। इसी सम्मलेन में जन्म हुआ हमारे सामूहिक अभियान का, जिसका नाम रखा गया प्रॉपर्टी फॉर हर (Property For Her) यानि जायदाद औरतों की भी, सम्पत्ति स्त्री की भी।

मगर किसी भी बदलाव के लिए समाज की मानसिकता बदलना अनिवार्य है और यह काम अकेले महिलाओं का नहीं है। महिलाओं के समान अधिकारों का लाभ पूरे परिवार और समाज को होता है। हमें यह भी भूलना नहीं चाहिए कि एक समान परिवार ही एक सुखी परिवार हो सकता है। आज पूरी दुनिया को पता है कि स्त्री-पुरुष समानता के बग़ैर परिवार, समाज और देश तरक़्क़ी नहीं कर सकते। हम एक महत्वपूर्ण बात कहना चाहते हैं। इस अभियान में हम अधिकारों, क़ानूनों और न्याय से ज़्यादा हमारी सोच और तौर-तरीक़ों को बदलने का प्रयास कर रहे हैं। देश के संविधान और क़ानूनों ने समानता दे दी, तो हम भारत के नागरिक क्यों पिछड़ रहे हैं? हम क्यों अपने दिलों और परिवारों में समानता नहीं ला पा रहे?

अंत में इतना कि अगर हम अपनी बेटियों को प्यार करते हैं तो लगायें ये नारे और बदलें अपने परिवारों और समाजों की तस्वीर --

बेटी दिल में, बेटी विल में।
न दहेज न महंगी शादी, बेटी को देंगे सम्पत्ति आधी।

लेखिका: **कमला भसीन** और **मीनल मनोलिका**

लेख

महिलाओं के मकान और ज़मीन से जुड़े अधिकार

विभूति पटेल

परिचय

महिलाओं के मकान और ज़मीन से जुड़े अधिकार पिछले दो दशकों से भारत में महिला आन्दोलन का हिस्सा रहे हैं। जब महिला समूहों ने संघर्षशील महिलाओं को सहयोग देना शुरू किया तो उनके लिए नौकरी ढूंढना या उनके बच्चों को स्कूलों में दाख़िला दिलवाना फिर आसान था, सबसे मुश्किल काम था हिंसा से पीड़ित महिलाओं को, पति से अलग हुई महिलाओं को, जो अपने ससुराल या मायके से अलग हो जाती हैं और रिश्तेदारों द्वारा धोखा पाती हैं, उनके लिए रहने की जगह ढूंढना।

महिलाओं के मकान से जुड़े अधिकारः यह महिलाओं के सम्पत्ति और ज़मीन के अधिकार, विरासत अधिकार से जुड़े हैं। घर के प्रमुख उपयोगकर्ता के रूप में, महिलाओं के आवास से जुड़ी आवश्यकतायें और दावे अधिक प्रबल होते हैं। महिलाओं के लिए, आश्रय से बढ़कर, आवास एक रोज़गार की जगह है, सामाजिक जुड़ाव और आदान-प्रदान की जगह है। एक ऐसी जगह जो बच्चों की देखभाल के लिए है और सामाजिक अस्थिरता और यौनिक हिंसा से बचने की जगह है।

महिला प्रधान घरों की विशेष आवश्यकतायेंः भारत के शान्तिपूर्ण क्षेत्रों में 1/10 प्रतिशत घरों में तलाक़शुदा, पति से अलग और एकल महिलायें मुखिया होती हैं। हमारे देश के तनावपूर्ण क्षेत्रों में, 30 प्रतिशत से अधिक घर महिला प्रधान हैं। महिला प्रधान घरों में महिलायें मुख्य रूप से घर की आर्थिक ज़िम्मेदारियां उठाती हैं जिसमें घर ढूंढना भी शामिल है। चाहे उनके पास पैसे हों, फिर भी उन्हें अपने लिए किराए का मकान ढूंढने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है (स्वंय के मुखिया होने के कारण)। पूरी दुनिया के लगभग एक तिहाई घर महिला प्रधान हैं, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों में 45 प्रतिशत घर महिला प्रधान हैं। महिला प्रधान घर, पुरुष प्रधान घरों की तुलना में अधिक ग़रीब होते हैं। संयुक्त राष्ट्र के ह्यूमन सेटेलमेन्ट केन्द्र (मानव समझौता केन्द्र) के अनुसार विकासशील देशों के शहरों में लगभग 600 मिलियन लोग ऐसी जगहों पर रहते हैं जहाँ उनके जीवन और स्वास्थ्य को ख़तरा होता है।

मायके और ससुराल में रहने का अधिकारः पिछले 20 सालों में कई महिलाओं ने उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में पत्नी के ससुराल में रहने के अधिकार और बेटी के पैतृक आवास में रहने के अधिकार को लेकर याचिका दायर की है। हिन्दू धार्मिक क़ानून पर लागू मिताक्षरा क़ानून के अनुसार केवल बेटों को ही पैतृक सम्पत्ति में अधिकार है क्योंकि वे कर्ता माने जाते हैं। लता मित्तल ने उच्चतम न्यायालय में मिताक्षरा क़ानून जो हिन्दू बेटियों को पैतृक आवास में रहने के अधिकार से वंचित करता है, को चुनौती देते हुए एक याचिका दाख़िल की।

आवास और महिला की पहचानः महिलाओं की पहचान एक घर के साथ जुड़ी होती है लेकिन एक पूंजीगत निवेश के तौर पर घर की पहचान और घर के बजट के अधिकार परिवार के पुरुष मुखिया के पास होते हैं। महिलायें सम्पत्ति की मालिक हों या न हों, उनका स्थान घर के दायरे के भीतर ही माना जाता है। यह पारिवारिक जीवन का दायरा भी महिला की कोई मदद नहीं करता है बल्कि उसकी निम्न स्थिति को ऐसे ही जारी रखता है। बाज़ार अर्थव्यवस्था घरेलू काम के मूल्य को कम करती है। मुख्यधारा के योजना और नीति निर्माता इसे कोई "काम ही नहीं" समझते हैं और इस तरह से महिलाओं के आवास से जुड़े सरोकारों को अदृश्य कर देते हैं।

जेंडर पक्षपात और आवासीय समस्यायें या मुद्देः परिवार के अन्दर और बाहर के सामाजिक और आर्थिक रिश्तों की

जेंडर आधारित संरचना और समाज में गहराई में रची बसी पितृसत्तात्मक सोच और व्यवहार, महिलाओं के आवास से जुड़े अधिकारों के हर पहलू पर वास्तविक भेदभाव दर्शाते हैं। चाहे वह नीति विकास की बात हो, सरकारी प्रोजेक्ट और कार्यक्रमों को लेने की बात हो, परिवार के संसाधनों पर नियंत्रण की बात हो, उत्तराधिकार के अधिकार और स्वामित्व की बात हो और यहाँ तक कि घर के निर्माण की भी बात में।

उभरते हुए मुद्दे: घर के मुद्दे को एक "व्यक्तिगत सरोकार" के तौर पर देखने की आवश्यकता है और साथ ही महिला की भूमिका उसमें कैसी है और आवासीय उद्योग का क्या नज़रिया है? राज्य को सकारात्मक उपाय करने चाहिए कि महिलायें अपने आवासीय अधिकारों का प्रयोग कर पाएं, क्योंकि पुरुष सम्पत्ति-स्वामी के नाम पर एक लाभकारी स्थिति में होते हैं और आवासीय सेवा व्यवस्था पर नियंत्रण रखते हैं। इसके अलावा महिलाओं को सामान्य रूप से पुरुषों के अधीन समझा जाता है और उनका खुद का भी ऐसा ही समझना, उच्च राजनीतिक इकाईयों के महत्वपूर्ण स्थानों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व न होने के रूप में दिखता है। सामाजिक प्रतिबंध महिला को एक द्वितीय दर्जे के नागरिक के रूप में स्थापित करते हैं। नतीजे के तौर पर, आवासीय उद्योग से जुड़ी महिला विशेषज्ञ जैसे इंजीनियर, वास्तुशिल्प और एजेन्टस् को भी पुरुष प्रधान निर्माण उद्योग के अनुसार ही काम करना पड़ता है।

जेंडर जागरुक विचारधारा: आवास से जुड़ी जेंडर आधारित सोच महिलाओं के विरुद्ध जाती है। इसलिए ज़रूरत है कि आवासीय मुद्दे में एक जेंडर जागरुक विचारधारा शामिल की जाए जो महिलाओं की रणनीतिक और राजनीतिक ज़रूरतों को देख सके, उनके सरोकारों और अधिकारों को ध्यान में रख सके। इसके लिए हमें आवास से जुड़े संबंधित समूहों और स्टेकहोल्डरों जैसे भूमि सर्वेक्षणकर्ता, बिल्डर्स, डिज़ाइनर, पूंजी लगाने वाले, गिरवी रखने वाले, बैंकर्स, वकील, क्रेडिट यूनियन, सरकारी अफ़सर, सामग्री पूर्तिकर्ता, रियल एस्टेट, ब्रोकर, मूल्य आंकने वाले, ठेकेदार, इन्टीरियर डेकोरेटर, माली, लैंडस्केप वास्तुशिल्प और को-ऑपरेटिव सोसाइटी, को संवेदनशील करने की ज़रूरत है। अतः दोनों ही आपूर्ति पक्ष जैसे उत्पादन, निर्माण, प्रबन्धन, व्यवस्था, पुनर्वास और मांग पक्ष जैसे समुदाय समूह, उपभोक्ता फ़ोरम और को-ऑपरेटिव सोसाइटी को महिलाओं के आवासीय अधिकारों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।

आवासीय सुरक्षा को लेकर अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार क़ानून: कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति के पास तब एक सुरक्षित आवास है यदि वह मनमाने ढंग से ज़बरदस्ती अपने घरों और ज़मीन से न निकाल दिए जाएं। आवास सुरक्षित है यदि वह प्रथाओं और परंपराओं के बजाए क़ानूनी रूप से सुरक्षित होता है।

महिला के आवासी सुरक्षा को ख़तरा: वह परिस्थितियां और हालात जो महिला के आवासीय सुरक्षा को ख़तरे में डालते हैं।

- **जेंडर आधारित क़ानून:** महिलाओं को अपने मकान, ज़मीन, जायदाद के स्वामित्व, विरासत, उसे ख़रीदने, लीज़ पर देने, किराए पर देने, वसीयत करने से रोकते हैं।
- **क़ानून की न्यायिक व्याख्या:** जेंडर समानता पर आधारित क़ानूनों में महिलाओं के आवासीय अधिकार पर कोई रोक नहीं, फिर भी वे महिलाओं के आवासीय अधिकारों के लिए इन क़ानूनों की पितृसत्तात्मक व्याख्या के कारण बाधायें बनाते हैं। सामान्य रूप से नियम और कथन केवल पुरुषों पर ही लागू होना माने जाते हैं।
- **भूमि और आवासीय व्यवस्था:** जैसे कि वह व्यक्तिगत सम्पत्ति को शीर्षक देते हैं "घर का मुखिया" जो अक़्सर पुरुष ही माना जाता है।
- **प्रचलित क़ानून, परंपरायें, व्यवहार:** बहुत सी परंपराएं और रीति-रिवाज़ महिलाओं को एक स्वतंत्र अस्तित्व की इजाज़त नहीं देते हैं। कई सभ्यता समूहों में तो अकेली, बिना किसी पुरुष के संरक्षण में रह रही महिला को सामाजिक भेदभावपूर्ण नज़रिए के कारण गंभीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं। प्रचलित क़ानून विधिबद्ध नहीं हैं। बहुपत्नी या बहुपति व्यवस्था वाले समुदायों में, एक अकेली स्वतंत्र जीवन जी रही महिला के विरुद्ध पूरे समुदाय की मान्यताएं खड़ी हो जाती हैं।

घरेलू हिंसाः घरेलू हिंसा, डर पैदा करके, तनाव देकर, महिला पीड़ितों और उनके छोटे बच्चों के बीच असुरक्षा की भावना पैदा करके एक महिला के आवासीय सुरक्षा को चुनौती देती है। महिला के आवासीय अधिकारों का हनन महिला के विरुद्ध हिंसा का नतीजा और कारण दोनों ही हो सकता है, विशेषकर घरेलू हिंसा के संदर्भ में।

आर्थिक और भौतिक बाधायेंः

आवास ढूंढते समय सबसे बड़ी बाधा जिसका महिलायें सामना करती हैं, वह आवास से जुड़ी वित्तीय योजनाओं में जेंडर भेदभाव है। आवास के राजनीतिक आर्थिक पहलू को संभालने के लिए ज़रूरी है— सेवाओं की उपलब्धता, सामग्री और निर्माण, अपने बजट में होना, रहने योग्य होना, पहुंच में होना, क्षेत्र या स्थान और सांस्कृतिक उपयोगिता। एक अच्छी गुणवत्ता का मकान ख़रीदने के लिए महिलाओं को लोन लेने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एकल महिला या महिला प्रमुख परिवार के लिए किराए पर घर ले पाना आसान नहीं होता। अगर वे किराए का घर लेने में सफ़ल हो भी जाएं, उन्हें अलग-अलग तरह के उत्पीड़नों का सामना करना पड़ता है। अविवाहित एकल महिलाओं को यौनिकता से जुड़ी नैतिकता के लिए ख़तरा माना जाता है। महिलाओं के लिए वृद्धाश्रम के न होने के कारण, बड़ी उम्र की महिलाओं के लिए तो स्थिति बहुत दयनीय हो जाती है। कई निराश्रित महिलायें, फ़ुटपाथ या रेलवे प्लेटफ़ार्म पर रहना शुरू कर देती हैं।

महिलायें जो अपने ज़मीन जायदाद के अधिकार का प्रयोग करती हैं उन्हें डायन बता दिया जाता है।

कई महिलायें घर और जायदाद पर अपना क़ानूनी अधिकार खो देती हैं, कई बार वे घर से निकाल दी जाती हैं और मार दी जाती हैं। सबसे भयानक घटनायें हैं

- भूताली (महाराष्ट्र), डायन (बिहार) - विधवा/तलाक़शुदा दलित/आदिवासी महिलायें।
- हाल ही के कुम्भ मेले में 60000 महिलायें अपने परिवार के सदस्यों द्वारा छोड़ दी गईं।
- सरपंच, तलाती व तहसीलदार निरक्षर महिलाओं का फ़ायदा उठाते हैं।
- अल्जीरिया और पश्चिम अफ्रीका के देशों में एफ.एच.एच. (महिला मुखिया वाले घर) जला दिए गए हैं। मुस्लिम क़ानून के तहत रहने वाली महिलाओं की अन्तर्राष्ट्रीय समिति इस तरह की भयानक घटनाओं के विरुद्ध अभियान चला रही है।

महिलाओं के भूमि और आवास अधिकार के लिए निर्णायक समझौतेः

- मानवाधिकारों का संयुक्त घोषणा पत्र, 1948
- महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समापन संधि (सीडॉ), 1979
- शरणार्थियों के आवासीय अधिकार, 1951
- आदिवासियों के आवासीय अधिकार (इसे अभी नहीं अपनाया गया है)

यह सरकार को निर्देश देते हैं।

1. **विधिक तरीक़ाः** यह स्वामित्व और रहने के अधिकार को देखता है, विवाहित महिला को विवाहित सम्पत्ति में अधिकार, अविवाहित बेटी के लिए पूर्वजों के घर में रहने का अधिकार है। हेमा डांडेकर की चारकॉप की साइट और सर्विस योजना बताती है कि इस योजना के तहत किसी महिला के किसी मकान के स्वामित्व को लेकर कोई बाधा नहीं है। फ़्लैट खरीदने के लिए महिला की क़िश्त चुकाने की क्षमता को देखते हुए उसे लोन सुविधा दी जाती है।
2. **सामाजिक तरीक़ाः** एक इकाई के रूप में घर पारिवारिक ढांचे का हिस्सा है। आवासीय योजनाओं में यह स्पष्ट झलकता है। इस संबंध में महिलाओं और आश्रय समूहों ने पैरवी का काम किया है। 1993 के बाद, कुछ महिला वास्तुशिल्पों ने परिदृश्य को बदलने के लिए कुछ कार्यक्रम बनाये। उन्होंने ज़िम्मेदारी ली और माहिम के पास टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के फ़ंड की सहायता से दंगे प्रभावित इलाक़ों में नष्ट हुए घरों को फिर से बनवाया। इसके लिए उन्होंने बहुत मेहनत की। उन्हें सम्पूर्ण अफ़सरशाही के अत्यंत साम्प्रदायिक दृष्टिकोण

का सामना करना पड़ा। तीन-चार महीनों बाद, वे दिन्दोशी में एक ज़मीन का पट्टा लेने में सफ़ल हो गए। उन्हें दो-तीन बार कलेक्टर से मिलना पड़ा यह देखने के लिए कि जिन दंगा पीड़ितों को पट्टा दिया जा रहा है, वह महिलाओं के नाम पर हों क्योंकि महिलायें ही इन पट्टों को अपने लिए इस्तेमाल करती हैं जबकि पुरुष इन्हें बाज़ार में बेचने वाली वस्तु के रूप में लेते हैं।

समापनः राज्य और नागरिक समाज को महिलाओं के आवास के अधिकार को सशक्तिकरण के माध्यम से सुनिश्चित करना चाहिए। स्थानीय स्व-प्रशासित प्राधिकरणों को बाज़ार में उपलब्ध सभी फ्लैट्स/मकानों/औद्योगिक इकाईयों/दुकानों का 10 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित रखना चाहिए। वास्तुशिल्प स्कूल, इंजीनियरिंग कॉलेज और इन्टीरियर डिज़ाइन संस्थाओं को महिलाओं के लिए क्षमता निर्माण कार्यशालायें और प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना चाहिए। आवास उद्योग के निर्णय लेने वालों और मुख्यधारा की राजनीतिक इकाईयों के चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए जेंडर संवेदनशीलता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जेंडर संवेदनशील योजनाओं के निर्माण के लिए विशेषज्ञों को शहरी, ग्रामीण और जनजातीय आवास परियोजनाओं के शीर्ष विभागों को इस विषय से परिचित कराया जाना चाहिए।

संदर्भः

जीमोल उन्नी (1999) "प्रॉपर्टी राइट् फ़ार वूमेनः केस फ़ॉर जॉइन्ट टाइट्ल्स टू एग्रीकल्चर लैंड एंड अर्बन हाउसिंग", इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, मई 22-28

विभूति पटेल *(2002) वूमेन्स चैलेन्ज इन द न्यू मिलेनियम, ज्ञान पब्लिकेशन, दिल्ली। वेबसाइटः* ***www.gyanbook@vsnl.com***

लेखिकाः *विभूति पटेल, प्रवक्ता, एडवांस सेन्टर फॉर वूमेन स्टडीज़, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस, मुम्बई।*

अनुवादः सहबा सईद

कविता

घर मेरा नहीं!

ममता पाठक

घर की चाबियां देकर
वो बोला- घर तुम्हारा है।

मालकिन हो घर की और,
हाथ पकड़ अन्दर ले गया।

ये देखो मेरे सब दोस्त आएं हैं,
तुम्हें बधाई देने।

रमेश, सुरेश व मिस्टर पाण्डेय,
और वो रही शालिनी।

अब इधर देखो,
ये रहा हमारा कमरा।

पलंग का ये कोना मेरा,
और वो रहा तुम्हारा।

सिरहाने पर लाईट,
ताकि मैं किताबें पढ़ सकूं।

ये मेरी किताबों की अलमारी,
और ये कपड़ों की।
सामने छप्पन इंच का टी. वी.।

एक के बाद दूसरा,
दूसरे के बाद तीसरा कमरा।

अब देखो रसोई
यहां तुम्हारा राज चलेगा,
हैं ना, सब कुछ शानदार।

उसने घर के हर कोने को देखा
मुस्कुराई और बोली
हां सब कुछ बहुत शानदार
लेकिन,
पलंग के एक किनारे के सिवा,
इस घर में मेरा कुछ नहीं।
चाबियां तो मेरे हाथ में हैं,
लेकिन ये घर मेरा नहीं।
ये घर मेरा नहीं।

लेख

हिन्दू कोड बिल का इतिहास

सुधा अरोड़ा

जब भी अधिकारों की बात उठती है, स्त्री का पक्ष हाशिए पर धकेल दिया जाता है। स्त्रियां भी अपनी बिरादरी के हक़ में खड़ी नहीं होती क्योंकि उनकी सोच पर भी पितृसत्ता की प्रतिछाया हावी है।

कुछ सालों पहले जैसे ही अखबारों में एक संक्षिप्त सी सूचना छपी कि हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) विधेयक 2005 पारित हो गया है, सभी महिला संगठनों की कार्यकर्ताओं में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। एक लम्बे अरसे से इस संशोधन की प्रतीक्षा थी। लेकिन कुछ घरेलू महिलाओं की एक बैठक में जैसे ही इस विधेयक के पारित होने पर खुशी का इज़हार किया गया, एक रईस औरत ने छूटते ही कहा— "लो, अब संयुक्त परिवारों में झगड़े शुरू हो जाएंगे।"

मुझे एक धक्का सा लगा— "झगड़ा किस बात का? क्या बेटी को पिता की सम्पत्ति में हक़दार नहीं होना चाहिए?"

वह महिला फिर बोल पड़ी— "पर उसे तो उसका हिस्सा उसकी शादी के खर्च में और दहेज में दिया जा चुका है उसकी पढ़ाई पर क्या कोई खर्च नहीं हुआ, फिर और हिस्सा क्यों?"

- "बेटे की शादी आप बिना खर्च के कर लेते हैं, बेटा बिना किसी खर्च के ऊंची डिग्री हासिल कर लेता है?"
- "पर वह तो हमारे साथ ही रहता है न! बेटी तो शादी के बाद जिस घर जाएगी, उसके पति को अपने पिता की सम्पत्ति में जो हिस्सा मिलेगा, वह भी तो उसका ही होगा।"

भारतीय समाज में इसी तरह की मानसिकता के कारण स्त्री को न अपने पिता के घर सम्पत्ति में हिस्सा मिलता है, न शादी के बाद पति के उस घर में, जहां पहले ही दिन से उसे अनाधिकृत घुसपैठिए के रूप में देखा जाता है। ऐसे माहौल में संशोधन विधेयक का पारित होना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस संशोधन विधेयक को जानने से पहले हिन्दू कोड बिल का क़ानूनी इतिहास जानना ज़रूरी है। हिन्दू कोड बिल या विभिन्न संप्रदायों के पर्सनल लॉ व्यक्तिगत क़ानून को संहिताबद्ध करने का प्रस्ताव भारतीय नवजागरण का प्रमुख अंग रहा है। सती प्रथा के ख़िलाफ़ आन्दोलन खड़ा करने वाले राजा राममोहन राय ने उत्तराधिकार संबंधी हिन्दू क़ानून का विश्लेषण करते हुए सम्पत्ति पर औरतों के अधिकार के संबंध में अपने एक विस्तृत आलेख में कहा था— हिन्दू विधवाएं पति की चिता के साथ इसलिए भी खुद को जला लेती हैं कि वे अपने ही जैसी विधवाओं की जिंदगी की दुर्दशा को, अपमान और लांछना को देखती हैं। जब भी कोई विधवा या बेटी क़ानून के जरिए अपने भरण-पोषण के लिए, अपने अधिकार को हासिल करना चाहती है, उसी समय विद्वान ब्राह्मण — अदालतों में हो या सरकारी नौकरियों में — दो भागों में बंट जाते हैं। एक हिस्सा औरतों के पक्ष में खड़ा हो जाता है, दूसरा उनके विरुद्ध। आमतौर पर स्थितियां ऐसी बन जाती हैं कि इस देश की महिलाएं अपने अधिकारों के लिए किसी क़ानूनी लड़ाई को न लड़ने में ही अपनी बेहतरी समझती हैं।"

हिन्दू कानून को संहिताबद्ध करने की दिशा में 1937 में "हिन्दू महिलाओं का सम्पत्ति अधिकार क़ानून" जिसे देशमुख एक्ट भी कहा जाता है, पारित किया गया। इस क़ानून में सम्पत्ति पर उत्तराधिकार के विषय में विधवाओं को जो अधिकार दिए गए, उसमें कई नए विवादों ने जन्म लिया। 1941 में सर बी. एन. राव की अध्यक्षता में राव कमेटी का गठन हुआ। इस कमेटी ने उत्तराधिकार, विवाह-तलाक़, भरण-पोषण, संयुक्त परिवार की सम्पत्ति, विरासत और दत्तक विषयों पर एक संहिता का मसौदा तैयार किया जिसे "हिन्दू कोड बिल" का नाम दिया गया। डॉ. अम्बेडकर ने 12 अगस्त 1948 को "हिन्दू कोड बिल" पर संशोधन का एक प्रारूप तैयार किया। इसके आने के साथ ही विभिन्न रूढ़िवादी और सांप्रदायिक संगठनों ने ऐसा

कोहराम मचाया कि हिन्दू कोड बिल आम चर्चा का विषय बन गया। "धर्म खतरे में है" के नारे दिए जाने लगे। सम्पत्ति में बेटों के साथ ही बेटियों को समान अधिकार दिए जाने की बातें मनुस्मृति प्रेरित पुरुष समाज को स्वीकार नहीं थी। इस विधेयक का विरोध करने के लिए सनातन धर्म के उपासकों की सेना खड़ी हो गई जिसमें शंकराचार्य, ब्रह्मानंद सरस्वती, स्वामी करपात्री, सरदार बल्लभभाई पटेल और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने विधेयक के पारित होने पर अपने पद से इस्तीफ़ा देने की धमकी दी। पिता की सम्पत्ति में बेटे और बेटियों की समान भागीदारी का कड़ा विरोध करते हुए कहा गया कि इससे भाई-बहन के पवित्र संबंधों की परम्परा अर्थहीन हो जाएगी। महिलाओं ने भी हिन्दू कोड बिल के ख़िलाफ़ जमकर प्रदर्शन किए। सांप्रदायिक ताकतों ने यहां तक कहा कि एक अछूत जाति के व्यक्ति (डॉ. अम्बेडकर) को पूरे हिन्दू समाज के लिए क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है। पूरे मसले को घिनौना जातिवादी रूप देने की कोशिश की गई। पं. नेहरू ने जो पहले इस विधेयक के समर्थक थे, विरोध की व्यापकता को देखकर इसे पारित नहीं होने दिया। इसी सवाल पर डॉ. अम्बेडकर ने 28 सितम्बर 1951 को क़ानून मंत्री के पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

इन्द्र विद्या वाचस्पति ने इस विधेयक को हिन्दुस्तान में लागू करने की मांग करते हुए कहा— "मैं यह नहीं मानता कि केवल हिन्दू स्त्रियों पर ही अत्याचार होता है। देश की और स्त्रियों पर भी अत्याचार होता है और यह समाप्त होना चाहिए।" उन्होंने भारत के धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के हित में एक समान इंडियन कोड बनाने की मांग की जो हिन्दू संप्रदाय तक सीमित न रहकर मुसलमान, पारसियों, यहूदियों, ईसाइयों आदि पर भी लागू किया जाए। इस पर पंडित — मुल्ला — फादर — सभी धर्मों के ठेकेदार नाराज़ हो गए कि यह उनके धर्म में हस्तक्षेप है। बाद में ईसाई और मुस्लिम धर्म की स्त्रियों के क़ानून को हाथ न लगाते हुए केवल हिन्दू स्त्रियों के संबंध में क़ानून पारित किया गया। धर्मनिरपेक्ष स्त्रियों के लिए समान नागरिक कायदा न बन सका।

भारत में महिलाओं के सम्पत्ति अधिकार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1958, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925, मुस्लिम पर्सनल लॉ तथा अन्य समुदायों से संबंधित पर्सनल क़ानूनों द्वारा संचालित होते रहे हैं। क़ानून द्वारा भारतीय महिला को बराबरी का अधिकार दिए जाने के बावजूद महिलाएं इस अधिकार से वंचित हैं— कारण कभी धर्म, परम्परा और समाज है, कभी पारिवारिक संबंधों को मधुर बनाए रखने के तहत पैतृक सम्पत्ति में अधिकार मांगने की बेटियों की अपनी अनिच्छा। हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) विधेयक 2004 स्त्री-पुरुष को बराबरी का दर्जा दिलाने की ओर घोषित रूप से पहला सकारात्मक क़दम है। आवश्यकता इस बात की है कि यह संशोधन विधेयक 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून की तरह महज़ एक कागज़ी क़ानून बनकर न रह जाए। इस क़ानून के तहत एक जागरूकता अभियान की भी ज़रूरत है जिसके तहत स्त्रियों को यह जानकारी हो—

- अब बेटियों को संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में जन्म लेने के कारण अपना हिस्सा मिल सकेगा, उतना ही जितना उसके भाई को मिलेगा।
- वे संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपना हिस्सा कभी भी बेच सकती हैं।
- वे अपनी सुविधानुसार पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे की मांग कर सकती हैं।
- वे संयुक्त परिवार की कर्ता की हैसियत से रह सकती हैं।

इस विधेयक में जो एक महत्वपूर्ण मुद्दा छूट गया है, वह है कृषि क्षेत्र — जो राज्य सरकार के अधीन है। इस क्षेत्र में असमानता अधिक है और यह अपेक्षाकृत वृहद क्षेत्र है। झारखण्ड के कुछ आदिवासी इलाकों में बेटियों के लिए "ताबेन जोम" (ज़मीन का हिस्सा) की प्रथा सदियों से चली आ रही है। ज़रूरी है कि सभी खेतिहर इलाकों में स्त्री पुरुष में असमानता के दर्जे को समाप्त किया जाए।

लेखिकाः **सुधा अरोड़ा**— सातवें दशक की चर्चित कथाकार है। जो 1965 से लेकर अब तक हिन्दी लेखन के क्षेत्र में सक्रिय है। "आम औरत ज़िन्दा सवाल" और "एक औरत की नोटबुक" इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। तमाम कहानियां, कविताएं और एक उपन्यास भी लेखन में शामिल हैं। इनकी लिखी कहानियां अंग्रेजी के अलावा अन्य कई विदेशी भाषाओं में अनुवादित हैं।

लेख

स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार और बाबा साहेब

रजनी तिलक

डॉ. अम्बेडकर हिन्दू कोड चाहते थे क्योंकि हिन्दू अपने धार्मिक क़ानूनों को परिवार में व्यवहार में लाते थे। समाज में सभी नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिए ज़रूरी है, समान नियम-क़ानून। एक व्यक्ति की अतिरिक्त आज़ादी दूसरे के अधिकार का अतिक्रमण है। अतः हिन्दू कोड के ज़रिए, हिन्दू स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति में हक़, विवाह की आज़ादी, तिलक, भरण-पोषण, दत्तक उत्तराधिकार का अधिकार दिलाकर समाज में प्रचलित बहु-विवाह पर लगाम लगाने का एक प्रयोजन था। लिंग-भेद व पितृसत्तात्मक ढांचे पर यह क़ानून प्रहार करता था। सवर्ण जातियां इस क़ानून से ज़्यादा नियंत्रित होती थीं। हालांकि निम्न-समुदायों में सामुदायिक पंचायत द्वारा विवाह-विच्छेद व पुनर्विवाह, विधवा-विवाह का रिवाज़ मौजूद था। बावजूद इसके उन्होंने निम्न समुदायों को भी हिन्दू कोड बिल में शामिल किया। बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि पितृसत्तात्मक ढांचे की पंचायतों में स्त्री को न्याय नहीं मिलता। जाति (सामुदायिक) पंचायतें प्रभुत्वशाली व्यक्ति का साथ देती हैं। वे भ्रष्ट व पक्षपात कर सकती हैं। अतः उन्होंने हिन्दू कोड में हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन और ग़ैर-मुस्लिम, सबको एकसूत्र में बांधकर लाखों-करोड़ों दुखियारी औरतों को पति के अत्याचार, उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने के लिए हिन्दू बिल का स्वरूप तैयार किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू मंत्रीमंडल के क़ानून मंत्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर पर यह गलत आरोप लगाया कि हिन्दू कोड बिल नाम की इस बला से यह अधिनियम, सगे भाई-बहनों को शादी की सहमति देता है।

बेटी की सम्पत्ति के अधिकार से दामाद घर पर व सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर लेगा। यह बात भी हवा की तरह फैल गई कि क़ानून से औरतें तलाक़ लेंगी तो घर टूट जाएंगे। हिन्दू कोड के विरुद्ध कई प्रकार की भ्रांतियां फैलाई गईं। पोस्टरों व जनसभाओं में हिन्दू कोड बिल की बुराई की गई। डॉ. अम्बेडकर को जगह-जगह अपमानित किया गया। प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू प्रगतिशील व उदारवादी थे। वे भी महिलाओं हेतु इस क़ानून के पक्ष में

थे। इस मामले में वे डॉ. अम्बेडकर के साथ थे। लेकिन विरोधी ताक़तों के सामने उन्होंने हथियार डाल दिए। हिन्दू कोड बिल को केन्द्रीय असेम्बली में रखते ही प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी सनातनी मानसिकता के लोगों के विरोध प्रखर हुए और असेम्बली के बाहर तरह-तरह के सनातनी प्रदर्शन होने लगे। हिन्दू कोड बिल का तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सहित अनेक प्रभावशाली कांग्रेस जनों ने बड़े पैमाने पर विरोध किया।

1944 में बी. एन. राव की अध्यक्षता वाली समिति ने कोड से संबंधित मसौदा सरकार को सौंपा। स्वाधीनता के बाद भी कोई कार्यवाही नहीं की गई। कार्यवाही तब हुई जब तत्कालीन क़ानून मंत्री बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना हुई। अम्बेडकर समिति द्वारा विधेयक में विवाह की आयु सीमा बढ़ाने, स्त्रियों को तलाक़ का अधिकार देने, मुआवज़ा तथा विरासत के अधिकार के साथ-साथ दहेज को स्त्री धन मान लेने के सुझाव दिए गए।

इस विधेयक के विरोध में तरह-तरह की विचार गोष्ठियां, जुलूस-धरने पूरे देश में आग की तरह फैल रहे थे। जयपुर में दिनांक 16-17 एवं 18 दिसम्बर, 1948 को सम्पन्न हुए अखिल भारतीय हिन्दू कोड विरोधी सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव पारित हुए।

- यह बिल हिन्दू क़ानून की वैदिक एवं शास्त्रीय जड़ों पर प्रहार करता है और यह गंभीर रूप से हिन्दू धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दुओं के सामाजिक ढांचे की जड़ों को नुकसान पहुंचाएगा।
- इस बिल की विवाह, तलाक़ और विरासत इत्यादि की धाराएं हिन्दू क़ानून की हितकर एवं सनातन मान्यताओं का विरोध करती हैं।
- विरासत में स्त्रियों की भागीदारी संबंधी जिस नई धारा का उल्लेख किया गया है, इससे न केवल मतभेद बढ़ेंगे, बल्कि हिन्दू परिवार-व्यवस्था भी बाधित होगी जो युगों-युगों से पारिवारिक संबंधों को बचाने, हिन्दुओं के बीच पारिवारिक सम्पत्ति और पारिवारिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सरकारी संस्थान के रूप में कार्यरत रही।

सभी विचार-गोष्ठियों, जुलूस, धरनों-प्रदर्शनों में डॉ. अम्बेडकर और जवाहर लाल नेहरू को खूब गालियां दी गईं। एक बार एक विशाल विरोध जुलूस बाबा साहेब के घर में घुस आया और उन्होंने नारेबाजी व पथराव किया। उन्हें धमकियों भरे पत्र आते थे। यहां तक कि लोग उन्हें अछूत मंत्री कहते हुए धमकी देते कि वे हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप न करें। पार्लियामेंट में हिन्दू कोड बिल विरोधी नेता सारा समय बेकार की चर्चा में ख़त्म कर देते। इस समय के लोक सभा अध्यक्ष भी बिल विरोधी राय रखते थे। बिल के विरुद्ध फैलाई गई तमाम गलतफ़हमियों को दूर करने के लिए हिन्दू कोड बिल को हिन्दी और उर्दू में अनूदित करके दस हजार प्रतियां हिन्दू संस्थाओं को मुफ़्त बांटी गई। दैनिक समाचार-पत्रों में उन्हें प्रकाशित करवाया गया। 'वीर अर्जुन' के सम्पादक से, जो स्वयं गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक व संस्कृत के विद्वान थे, श्री रामगोपाल विद्यालंकार के मार्फ़त हिन्दू कोड बिल में निहित स्त्री अधिकारों पर विशेष लेख लिखवाए गए।

हिन्दू धर्म में स्त्री अधिकारों को हिन्दू धर्म के अनुकूल सिद्ध करने के लिए पंडित धर्मदेव विद्यालंकार को खोजा गया, जिनसे अनुरोध किया गया कि वे अपनी शास्त्रीय खोज में हिन्दू कोड के समर्थन की सामग्री दें। पंडित धर्मदेव विद्या वाचस्पति विद्या मार्तंड थे। उन्होंने शास्त्रों से नपुंसक पति से तलाक़, कन्या को पिता की सम्पत्ति, पति से तलाक़, एकमात्र कन्या संतान आदि का पता किया जो 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित हुए। आर्य समाजी भी विधवा-विवाह के लिए सहमत थे। अखिल भारतीय महिला कांग्रेस ने उस समय जगह-जगह गोष्ठियां करके हिन्दू कोड बिल का पुरजोर समर्थन किया। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर महिलाओं की आवाज़ का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

- पति-पत्नी में किसी कारणवश नहीं पटती या नहीं बनती तो दोनों को अजीर्ण दुःखी जीवन से उबरने के लिए क़ानूनी उपाय, आपसी सहमति से तलाक़।
- पुरुष का बहु-विवाह पर प्रतिबंध, क्योंकि पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर पत्नी अपने रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाती थी और दूसरा विवाह नहीं कर पाने पर वह बोझ का जीवन जीने पर अदालत का दरवाज़ा

खटखटा सकती थी और अपने खर्चे का दावा कर सकती थी।

- दुष्ट और प्रताड़ना देने वाले पति से तलाक़ लेकर दूसरी शादी कर सकती थी।
- विधवा या अविवाहित स्त्री को दत्तक पुत्र या पुत्री लेने का अधिकार।
- पिता की सम्पत्ति में अधिकार
- वैवाहिक-सम्पत्ति का अधिकार

उक्त अधिकारों के लिए नारीवादियों एवं समाज सुधारकों के साथ-साथ कांग्रेसजनों ने भी समर्थन किए। दुर्गाबाई देशमुख जो खुद एक वकील थीं, ने अपनी ज़ोरदार दलीलों में स्त्रियों के हक़ में काफ़ी तर्क प्रस्तुत किए परन्तु राजेन्द्र प्रसाद एवं सरदार पटेल का विरोध ही नेहरू के हाथ-पांव फुलाने के लिए पर्याप्त था। उन्होंने इस क़ानून को 1955-56 तक लटकाकर रखा। जब तक कि इनकी धाराओं को चार भिन्न-भिन्न क़ानूनों के रूप में पारित नहीं कर दिया गया। जो चार क़ानून बनाए गए थे वे क्रमशः हिन्दू-विवाह क़ानून, उत्तराधिकार क़ानून, हिन्दू अल्पवयस्कता, अभिभावकत्व, हिन्दू गोद एवं गुज़ारा भत्ता क़ानून के रूप में जाने गए। नेहरू के इस क़दम के विरोध में अम्बेडकर ने उनके मंत्रीमंडल से त्यागपत्र दे दिया तथा महिला संगठनों ने काफ़ी शोर मचाते हुए विरोध किया। लेकिन सरकार ने संगठित या संयुक्त हिन्दू कोड की मांग पर कोई विचार नहीं किया।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सड़क से लेकर संसद तक धार्मिक पाखंडों से लेकर सामाजिक रीति-रिवाज़ों के साथ स्त्रियों और दलितों के हक़ में लड़ रहे थे। आज भारत की समस्त स्त्रियां हिन्दू कोड बिल की पास हुई धाराओं से पाई गई समानता और लड़ने के अधिकार के लिए स्वतंत्र हैं। भारत का स्त्री-मुक्ति आंदोलन लैंगिक शोषण और भेदभावों के विरोध में खड़ा है। पूरे देश में हज़ारों संस्थाएं, सैकड़ों महिला संगठन इस भेदभाव के विरोध में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। इन आंदोलनों के दबाव में ही अनेक क़ानून बनाए गए हैं। दहेज, भ्रूण-हत्या, डायन, बलात्कार, छेड़छाड़ और कार्यस्थल पर यौन-हिंसाओं के विरुद्ध जो क़ानून आए हैं, वे न सिर्फ़ अपर्याप्त हैं बल्कि उन क़ानूनों के प्रति पूरे समाज में इसकी स्वीकृति की बहुत ज़रूरत है।

(पुस्तक साभार 'दलित स्त्री विमर्श एवं पत्रकारिता' के लेख डॉ. अम्बेडकर और महिला आन्दोलन के कुछ अंश।)

लेखिकाः **स्व. रजनी तिलक** *(1958-2018) - स्व. रजनी तिलक लेखिका, कवयित्री, पत्रकार व दलित स्त्री मुक्ति आंदोलनों की कार्यकर्ता थीं।*

—◆◆◆—

कविता

जायदाद बिना न रहेंगे

कमला भसीन

अब जायदाद बिना न रहेंगे
भगिनियों
बोलो भगिनियों
मुंह खोलो भगिनियों

जायदाद बिना औरत
घर की ना घाट की,
होंगे घाट और घर हमारे
भगिनियों
अब जायदाद बिना न रहेंगे

शादी करें न करें कौन जाने।
दहेज नहीं फ्लैट लेंगे, भगिनियों
अब जायदाद बिना न रहेंगे

भईया बिचारे क्यों
अकेले संभाले
जायदाद हम भी संभाले
भगिनियों
भईया का बोझा, घटा ले भगिनियों
बोलो भगिनियों, मुंह खोलो भगिनियों।

लेख

भारतीय महिलाओं का सम्पत्ति अधिकार

सुजाता चौहान

भारत में विवाह, तलाक़ सुरक्षा और विरासत मुद्दों को अधिकांशतः धार्मिक क़ानूनों के आधार पर तय किया जाता है। प्रत्येक धर्म के अपने संहिताबद्ध या अनौपचारिक व्यक्तिगत क़ानून हैं। दूसरी ओर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 धर्मनिरपेक्ष कानून हैं जो सभी पर लागू होते है। भारतीय संविधान समानता प्रदान करता है परन्तु धार्मिक क़ानून स्त्री-पुरुष में असमानता का भाव रखते हैं। विभिन्न धर्मों के अपने अलग-अलग कई सम्प्रदाय होते हैं और सभी के अपने अलग-अलग रीति-रिवाज़ और क़ानून हैं। अतः कह सकते हैं कि भारतीय महिलाओं के अधिकार उनके धर्म और वैवाहिक जीवन के अनुसार बदलते रहते हैं। 1937 से पहले हिन्दू क़ानून में महिलाओं को कोई अधिकार नहीं था। विवाह के समय माता-पिता से उसे जो कुछ भी मिलता बस वही उसका अपना होता। फिर 1937 में हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम आया जिसमें उत्तराधिकार के मुद्दे पर बड़े परिवर्तन हुए। जब महिलाओं को विरासत या विभाजन से प्राप्त सम्पत्ति पर पूर्ण स्वामित्व मिला। 174वें क़ानून आयोग की रिपोर्ट के अनुसार हिन्दू क़ानून में बेटा-बेटी को सम्पत्ति में एक समान अधिकार दिया गया है जो हिन्दू उत्तराधिकार अधिकार संशोधन अधिनियम 2005 में सम्मिलित है। मुस्लिम क़ानून जो कि एक अनौपचारिक क़ानून है, इसके अनुसार सम्पत्ति विरासत में महिला का हिस्सा पुरुषों के ही समान है। विवाह के समय 'मेहर' की राशि तय होती है। विवाह के बाद यदि बच्चे हैं तो सम्पत्ति का आठवां हिस्सा और यदि बच्चे नहीं हैं तो चौथा हिस्सा महिला को विरासत के रूप में मिलता है। वहीं यदि पत्नी एक से अधिक हैं तो सम्पत्ति में हिस्सेदारी घटकर छः प्रतिशत हो सकती है। लेकिन जहां

कोई हिस्सेदारी नहीं वहां पत्नी सम्पत्ति के एक बड़े भाग की हक़दार बनती है। हालांकि एक पुरुष अपनी सम्पत्ति का एक तिहाई भाग विलय कर सकता है।

ईसाई क़ानून में भी बेटियां बेटों के समान माता-पिता की सम्पत्ति में हक़दार होती हैं। शादी के पहले वे माता-पिता की सम्पत्ति में आश्रय और जीवन-यापन की हक़दार हैं लेकिन माता-पिता के बाद उनका कोई हक़ नहीं होता। अपनी किसी निजी सम्पत्ति पर बहुमत मिलने तक उसके पिता ही सम्पत्ति के संरक्षक होंगे।

वैवाहिक घर में पति की मृत्यु के बाद पत्नी एक तिहाई सम्पत्ति की हक़दार होती है। बाकी बची सम्पत्ति सभी बच्चों में बराबर विभाजित कर दी जाती है। पति के न रहने पर यदि उसके किसी बच्चे की मृत्यु हो जाती है तो उस बच्चे की सम्पत्ति का एक चौथाई हिस्सा उसे मिल सकता है।

हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005, जेंडर असमानता को दूर करता है और बेटी-बेटों को एक समान सम्पत्ति में अधिकार दिलाता है। जैसे सहभागी व्यापार में बेटी जन्म से ही उस सम्पत्ति की हक़दार होगी जिस प्रकार बेटा होगा। बेटी को बेटों के समान ज़िम्मेदारियां भी उठानी पड़ेंगी। एक विवाहित बेटी को पिता के घर में आश्रय या खर्चा लेने का कोई अधिकार नहीं लेकिन अगर वह विधवा तलाक़शुदा या पति से अलग है तो वह पिता के घर में आश्रय ले सकती है। एक विवाहित महिला को अपनी अर्जित की हुई, उपहार मिली हुई या विरासत में मिली हुई सम्पत्ति पर विशेष अधिकार है जब तक वह अपनी मर्ज़ी से उसे खर्च न कर दे या किसी को दान या उपहार में दे दे। इसके साथ ही वह पति से रख-रखाव व आश्रय की भी हक़दार है। यदि पति संयुक्त परिवार में रहता है तो वह परिवार पर हक़ रखती है। हिन्दू क़ानून में यह एक मज़बूत कदम है लेकिन, महिला मुद्दों पर क़ानूनी रूप से काम करने वाली दिल्ली की एक संस्था 'लॉयर्स कलेक्टिव' ने 2010 में इसकी कमियों को दृढ़तापूर्वक इंगित किया। जैसे- मां को विधवा या यूं कहे महिलाओं को स्वयं अधिग्रहित या पैतृक सम्पत्ति में सहभागी के तौर पर देखा ही नहीं जाता। कृषि भूमि के सन्दर्भ में स्थिति भ्रामक है। वारिसों के लिए एक यथास्थिति पृष्ठभूमि तैयार करने की संभावना हमेशा बनी रहती है।

भूमि अधिकार महिलाओं को सशक्त बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन हमारे भारतीय क़ानून पितृसत्ता और मर्दानगी की विचारधारा से प्रेरित हैं, जो परिवार और समाज में शक्ति संबंधों को दिखाते हैं। इसलिए इन क़ानूनों के क्रियान्वयन में बहुत बाधाएं हैं। जब भी महिलाओं को दहेज या वैवाहिक परिवार द्वारा सम्पत्ति मिलती है वहां महिलाओं का स्वामित्व मात्र औपचारिक हो जाता है। अक़्सर देखा जाता है कि भवन का नाम पुरुष सदस्यों के नाम पर होता है। सामान्यतः निर्णय लेने की भूमिका में पुरुषों को उचित माना जाता है, जैसे पुरुष बेहतर कर सकते हैं। दूसरी तरफ़ महिलाओं को बलिदान करने और अच्छी औरत बनने की प्रेरणा दी जाती है। निष्कर्ष यह है कि जैसा कि हमारे संविधान में समानता प्राप्त करने की गारंटी दी जाती है लेकिन इसके लिए क़ानूनी उपाय पर्याप्त नहीं। क़ानूनों को लागू करने के लिए परिवार और समाज में महिलाओं को बुनियादी समानता देने के लिए जेंडर संवेदनशीलता में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

लेखिकाः **सुजाता चौहान,** *सहायक प्रवक्ता, एडवान्स सेन्टर फॉर वूमेन स्टडीज़, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइन्स, मुम्बई*

अनुवाद- प्रणाली पांजरेकर

1771 में न्यूयार्क पहला अमेरिकी राज्य बना जहां किसी महिला द्वारा शादी में लाई गई सम्पत्ति या उपहार उसका पति उसकी अनुमति के बिना नहीं बेच सकता।

लेख

महिला सम्पत्ति अधिकार: पूर्वोत्तर के संदर्भ में

रौशमी गोस्वामी

नवम्बर 2014, मिजो महिलाओं के आन्दोलन के लिए एक ऐतिहासिक जीत के रूप में याद किया जाता है। जब मिजोरम विधानसभा ने मिजो विवाह, तलाक़ और उत्तराधिकार सम्पत्ति विधेयक 2014 को पारित करने का निर्णय लिया था। मिजो हिमेची इनसुख्वान पॉल या एम.एच.आई.पी. महिला समूह द्वारा महिलाओं के अधिकारों और समानता के लिए किए गए 40 वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद यह जीत मिली। मिजो समुदाय के प्रथागत क़ानून के अनुसार किसी महिला का पति, महिला को कुछ शब्द बोलकर तलाक दे सकता है। वे शब्द हैं "का मे चे" अर्थात मैं तुम्हें तलाक देता हूं। इस स्थिति में महिला को अपना वैवाहिक घर छोड़ना पड़ता था और उसे कुछ भी हरजाना नहीं मिलता था। यहां तक कि शादी के समय लाया गया अपना निजी सामान भी उसे छोड़ना पड़ता था। पति के साथ संयुक्त रूप से हासिल की गई सभी (चल-अचल) सम्पत्तियां पति को मिलती थीं। नया नियम तलाक़ के इस ग़ैर कानूनी और भेदभावपूर्ण स्थिति को ख़त्म करते हुए महिलाओं को पति की सम्पत्ति और आय का 25 प्रतिशत प्राप्त करने का अधिकार देता है। एक राज्य जो 89.27 प्रतिशत की एक प्रभावी महिला साक्षरता दर का दावा करता है लेकिन वहां प्रति 1000 पुरुषों में 976 महिलाओं का लिंग अनुपात हो, ये दोनों स्थिति एक दूसरे से पूरी तरह अलग है। हालांकि मिजो महिलाएं कई क्षेत्रों में एक अच्छे जीवनस्तर का आनन्द लेती हैं लेकिन जब सम्पत्ति के अधिकार की बात आती है तब वहां अलग कहानी होती है। पूर्वोत्तर भारत में सभी जनजातीय, जिनमें मातृवंशीय समुदाय भी पितृसत्तात्मक हैं। उनके वंश/परिवार प्रथागत क़ानूनों से संचालित होते हैं जो मूलतः सत्ता और नियंत्रण के पितृसत्तात्मक विचारधारा के अनुसार बनाए जाते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के 200 से अधिक जातीय समुदायों के लिए प्रथागत क़ानून बहुत महत्वपूर्ण हैं जो उनके जीवन सिद्धांतों को निर्धारित करते हैं और अक़्सर ये सिद्धांत संवेदनशीलता का मुद्दा भी होते हैं। अर्थात इन प्रथागत क़ानूनों को मानना या न मानना उनकी भावनाओं से जुड़ा होता है। प्रथागत क़ानून जनजाति प्रथा के नियमों का एक समूह होते हैं जिन्हें समाज में क़ानून की शक्ति के रूप में पहुंचाया जाता है क्योंकि यह एक लंबे समय तक लगाातर और समान रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता है। प्रथागत क़ानून एक जनजाति समुदाय की पहचान और जीवन मूल्यों के संरक्षक के रूप में होते हैं। इन क़ानूनों के द्वारा बने नियम प्रक्रियाओं को अपनाने का दबाव बनाते हैं, नियमों के उल्लंघन पर सज़ा प्रदान करते हैं। प्रथागत क़ानून जनजाति से जनजाति और कभी-कभी गांव से गांव में अलग होते हैं। अन्य क़ानूनों की अपेक्षा आदिवासी समाज में क़ानून में भेदभाव कम और समानता अधिक होती है। महिलाओं को कुछ स्तरों पर अपने अधिकारों का आनन्द मिलता है लेकिन पुरुषों के बराबर नहीं। जब विरासत की बात आती है या सम्पत्ति

के इस्तेमाल या नियंत्रण का अधिकार तो, यह पूरी तरह स्पष्ट है कि जनजातीय समुदाय और समाज पर पुरुष नियंत्रण की परंपरा है, जहां महिलाओं को पुरुषों की छाया में सुरक्षित किया जाता है।

क्षेत्र की अधिकांश जनजातियां, कबीले या पैतृक और अधिग्रहित सम्पत्ति के बीच एक विभाजन करती हैं। यद्यपि केवल पुरुष ही नियंत्रण और अधिग्रहण/कब्ज़ा करते हैं, परन्तु अधिग्रहित सम्पत्ति बेटों या बेटियों को भेंट की जा सकती है। नतीजतन, ज़्यादातर महिलाओं के आभूषण, बर्तन, कपड़े, बास्केट और काम के अन्य उपकरण उनके होते हैं लेकिन कोई अचल सम्पत्ति नहीं होती जब तक कि वह उनके माता-पिता या भाई ने उपहार में न दिया हो। कई उदहारणों में ऐसी सम्पत्तियां होती हैं जो हक़ के बजाय उपहार के रूप में आती हैं। उदाहरण के लिए नागालैंड की 'एओ' जनजातियों में एक बेटी को भेंट की गई सम्पत्ति उसकी मृत्यु तक उसके साथ रही लेकिन उसकी मृत्यु के बाद वह वापस पिता के कबीले के पुरुष उत्तराधिकारी के पास आ गई। इसी तरह एक पुरुष उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में मिजो जनजाति में किसी दूसरे की अपेक्षा छोटी बेटी को वरीयता दी जाती है, एक दूरदराज़ के इंसान के बजाय परिवार की एक महिला सम्पत्ति की हक़दार हो सकती है। उदाहरण के लिए अरुणाचल के हिल मिरिस में, जहां महिलाएं भूमि या अचल संपदा की वारिस नहीं हो सकती, परन्तु परंपरा के अनुसार एक लड़की को शादी से पहले निजी सम्पत्ति या पारिवारिक सम्पत्ति का अस्थायी मालिक बनने की अनुमति मिलती है। इसी जनजाति में एक औरत को सम्पत्ति का बराबर हिस्सा मिल सकता है अगर उनके विवाहित जीवन के दौरान पति तलाक़ के लिए पूछता है।

लगभग सभी जनजातियों में विधवाएं बच्चों के साथ या बिना बच्चे के, मरे हुए पति की सम्पत्तियों पर रहने और आनन्द लेने का अधिकार रखती हैं यहां तक कि खेतों पर भी उनका अधिकार होता है। लेकिन अगर विधवा पुनर्विवाह करती है तो वह इस विशेषाधिकार को खो देती है। मिजो प्रणाली के तहत यदि विधवा पति के भाई के अलावा किसी और से शादी करती है तो बच्चों और सम्पत्ति को, भाई या अन्य पुरुष रिश्तेदार के पास देखभाल के लिए सौंप दिया जाता है। इसी तरह कई जनजातियों में जो महिलाएं अकेले रहना चाहती हैं, उनको यह अधिकार प्रदान किया जाता है। अंगामी जनजाति में अकेली महिला को जीवनयापन के लिए पैतृक सम्पत्ति के एक हिस्से पर घर बनाने और खेती करने का अधिकार प्राप्त है। महिला को पूर्ण स्वामित्व के अधिकार के साथ प्रयोग के लिए एक छत या चबूतरा भी उपहार में दिया जा सकता है और इस उपहार पर किसी भाई या कबीले के सदस्य द्वारा दावा नहीं किया जा सकता। वहीं दूसरे छोर पर मिजोरम के लश्कर जनजाति के मामले में और कार्बिस नागालैंड की और लोथस जनजाति में बेटों की अनुपस्थिति में बेटियों को नज़रअंदाज कर दिया जाता है और सम्पत्ति भाईयों या मृतक के नज़दीकी पुरुष रिश्तेदारों को दी जाती है या कबीले के पास वापस चली जाती है। हाल के दिनों में इनमें से कुछ अधिक कठिन स्थितियों को बदलने का प्रयास किया गया है। मणिपुर की पैतेई परंपरा में भी बेटे की अनुपस्थिति में बेटी को पारिवारिक सम्पत्ति देने की अनुमति नहीं दी है। हालांकि पैतेई जनजातीय परिषद ने 2004 के संशोधन में बेटियों और विधवाओं के पक्ष में प्रावधान प्रस्तुत किए हैं।

मातृवंशीय खासी, जयंतिया और गारो जनजाति की महिलाएं पितृवंशीय समाज की तुलना में बेहतर स्थिति का आनन्द ले रही हैं। हालांकि सम्पत्ति में महिलाओं का अधिकार पुरुषों के समान नहीं है, सम्पत्ति पुरुषों के नियंत्रण में रहती है क्योंकि उनके स्थानांतरण और उपयोग से संबंधित निर्णय पुरुषों द्वारा लिए जाते हैं। खासी में, सबसे कम उम्र की बेटी को जिसे 'खदुह' कहते हैं, उत्तराधिकारी के बजाय संरक्षक के रूप में देखा जाता है। वह परिवार की, सम्पत्ति की ज़िम्मेदारियां एक अभिभावक के रूप में अपने कंधे पर लिए होती है। अपने अन्य, कम सक्षम भाई-बहनों और माता-पिता की देखभाल करने के साथ-साथ धार्मिक कर्मकांडों के संरक्षक की ज़िम्मेदारी भी उसके कंधों पर होती है। बिक्री सहित सम्पत्ति से संबंधित सभी फ़ैसले वकील या मामा, चाचा की सहमति के बिना नहीं किए जा सकते। साथ ही धार्मिक संस्कार और समारोह में भी पुरुष रिश्तेदारों की अध्यक्षता रहती है। जयंतिया जनजाति भी ऐसी ही समान प्रणाली का पालन करती है, हालांकि उनमें कभी-कभी सबसे छोटा बेटा भी सम्पत्ति का

मालिक बन जाता है। गारो जनजाति में सबसे कम उम्र की बेटी सम्पत्ति की मुख्य उत्तराधिकारी (नोकमा) होती है, लेकिन उसका पति प्रबंधक बन जाता है जो कबीले के सदस्यों द्वारा सहायता प्राप्त करके सम्पत्ति नियंत्रित करता है। राभा और लालुंग जनजाति आंशिक रूप से मातृवंशीय हैं लेकिन धीरे-धीरे वे भी पितृवंशीय बनते जा रहे हैं। पारंपरिक रूप से राभाओं में, सबसे छोटी बेटी को अपनी मां की सम्पत्ति का बड़ा हिस्सा विरासत में मिलता था और दूसरी बेटियां बाकी हिस्सों को समान रूप से साझा करती थीं लेकिन पुरुषों का भूमि पर प्रबंधकीय नियंत्रण था। इसी तरह एक लालुंग समुदाय में लड़की परिवार के घर, भूमि और विरासत की उत्तराधिकारी होगी, लेकिन उसका पति प्रबंधक के रूप में सम्पत्ति अपने नियंत्रण में रखेगा।

पहचान के दावों ने इस क्षेत्र में हमेशा संघर्ष किया है। इस आधुनिक परंपरा में अन्तर्निहित प्रथागत क़ानूनों के माध्यम से पहचानों का पुनर्मूल्यांकन सामाजिक (जेंडर) समानता के लिए जटिल चुनौतियों का निर्माण करता है। आधुनिक राज्य योजनाओं और विकास कार्यक्रमों ने क्षेत्र के आदिवासी समुदायों की सामुदायिक भूमि या समान सम्पत्ति संसाधनों (सी.पी.आर.) प्रणाली की समानतावादी विचारों में असमानता का ज़हर फैला दिया है। सी.पी.आर. प्रणाली कबीले, गांव, यहां तक कि पूरी जनजातियों में स्थित है, लेकिन यह एक परिवार के उपयोग के लिए उपलब्ध है, समुदाय के किसी व्यक्ति को इसका अधिकार नहीं है। जबकि पुरुष समाज को नियंत्रित करते हैं। परिवार के मामले महिलाओं के अधिकार क्षेत्र में होते हैं। सी.पी.आर. प्रणाली पर निर्भर झूम किसानों के रूप में महिलाओं ने महत्वपूर्ण प्रबंधक की भूमिका निभाई और परिवार की अर्थव्यवस्था के प्रभारी होने के चलते उसके उत्पादन की देखरेख की। लेकिन राज्य सम्पत्ति के व्यक्तिगत ख़िताब के बिना सामुदायिक भूमि पर क्रमशः बदलाव होता रहा है। कई राज्यों के लिए विकास योजना एक बुनियादी आवश्यकता है, जिसने सत्ता को समुदाय से हटाकर कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों को सौंप दिया। जो प्रथागत क़ानूनों के संरक्षक और दुभाषिये बन गए। ज़्यादातर मामलों में राज्य और अभिजात वर्ग द्वारा दी गई व्याख्याएं बहुत ही संकीर्ण और पितृसत्तात्मक हैं। उदाहरण के लिए मातृवंशीय गारों समुदाय में फ़सल उत्पादन ख़ासकर रबड़ पौधों को प्रोत्साहित करने के लिए, राज्य सरकार ने नगद सहायता अनुदान केवल व्यक्तिगत भूमि मालिकों को अथवा उन पुरुषों को, जिन्हें परिवार का मुखिया माना जाता हो, उन्हें ऋण के रूप में दिया तथा झूम खेती करने वाले परिवारों को खेत पट्टे के रूप में उपलब्ध कराए। इस प्रक्रिया ने औरतों के उत्तराधिकार की, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के प्रभाव को कम किया और पुरुषों की स्थिति को मज़बूत करने के साथ-साथ उनको उत्तराधिकारी या नोकमा बनाने के विचार को बढ़ावा दिया।

भूमि पर सामाजिक, राजनीतिक शक्ति, स्वामित्व और नियंत्रण विशेषकर, बड़े पैमाने पर कृषि जनजातीय समुदायों में सब एक दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं। वास्तव में भूमि स्वामित्व या इसकी अस्वीकृति किसी समुदाय में सत्ता पदानुक्रम का प्राथमिक प्रतीक है। नारीवादी लेखक मोनालिसा चंकिजा के अनुसार 2017 के दौरान नागालैण्ड में पुरुष प्रभुत्व वाले सभी नागा आदिवासी निकायों, शहरी आदिवासी निकायों में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का हिंसक विरोध हुआ, जिसका कारण भूमि और संसाधनों पर अधिकार की भावना ही था। महिलाओं का कहना है— डर यह है कि संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाता है और शहरों में साझा किया जाता है जो गांवों तक फैले होंगे और नागा समाज की स्थिति को बाधित करेंगे। वह स्थिति जो अब तक पुरुषों के आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व का समर्थन करती रही है। प्रथागत क़ानूनों और पवित्र पहचान तर्कों का सहारा अब तक इस प्रक्रिया को रोकने में सफल रहा है। लेकिन मिजो महिलाओं की तरह नागा महिलाओं का संघर्ष भी अब तक चल रहा है।

लेखिकाः **रौशमी गोस्वामी** *नार्थ-ईस्ट (पूर्वोत्तर) नेटवर्क की संस्थापक है। वे पूर्वोत्तर के सन्दर्भ में मानवाधिकार और जेंडर के मुद्दों पर शोध व लेखन में सक्रिय है।*

अनुवादः ***ममता पाठक***

लेख

भारत में हिन्दू महिलाओं के लिए सम्पत्ति का अधिकार: मिथक और वास्तविकता

गायत्री शर्मा

सामान्यतः एक गलत धारणा बनी हुई है कि महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता को उभारने के लिए 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (एच.एस.ए.) को संशोधित किया गया है। हिन्दू क़ानून यह कहता है कि महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हैं। यह बात तो सही है कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के सेक्शन 6 में संशोधन कर यह निर्धारित किया गया है कि पैतृक/संयुक्त परिवार की सम्पत्ति पर बेटों के समान बेटियों का भी जन्म से ही अधिकार है। लेकिन हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के कई प्रावधान हैं जो कि हिन्दू महिलाओं के प्रति भेदभाव रखते हैं। इस लेख में हिन्दू उत्तरधिकार अधिनियम की ख़ामियों का उल्लेख है और यह तर्क है कि 2005 के संशोधनों द्वारा महिलाओं को दिए गए लाभ न्यूनतम हैं। इसके अलावा सम्मान रक्षा के नाम हत्याओं के द्वारा महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा में वृद्धि, डायन कहकर महिलाओं का शिकार करना और अपनी पसंद के साथी से विवाह करने पर नियंत्रण करना, यह सब उस डर से जुड़े हैं कि कहीं महिलाएं अपने सम्पत्ति अधिकार का इस्तेमाल न करने लग जाएं। एक तरफ 2005 के संशोधन से हिन्दू महिलाओं को बहुत कम राहत मिली और दूसरी तरफ महिलाओं पर हिंसात्मक आक्रमण बढ़ा जो सम्पत्ति के अधिकार का इस्तेमाल कर सकती हैं।

प्रथागत हिन्दू क़ानून (या मिताक्षरा क़ानून) की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि संयुक्त परिवार की पैतृक सम्पत्ति पर बेटों, पोतों एवं परपोतों का जन्म से ही अधिकार होता है। एक हिन्दू पुरुष के लिए अपने पिता, दादा या परदादा द्वारा विरासत में मिली सभी सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति है। सम्पत्ति पर अन्य क़ानूनों के विपरीत, जहां वारिस का अधिकार पूर्व-पूर्वज की मृत्यु के बाद ही लागू होता है। वहीं पारंपरिक हिन्दू मिताक्षरा क़ानून में, सम्पत्ति का अधिकार एक बेटे के जन्म के समय से ही लागू हो जाता है। भारत में ज़्यादातर जगहों में मिताक्षरा प्रणाली लागू होती है। बंगाल और असम में दयाभागा प्रणाली लागू होती है, जहां बेटों का जन्म से सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। दयाभागा प्रणाली के अंतर्गत जब तक पिता जीवित रहता है तब तक अपने पुश्तैनी या ख़ुद से बनाई गई सम्पत्ति का मालिक पिता स्वयं होता है।

1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में पारंपरिक मिताक्षरा हिन्दू क़ानून के कुछ पहलुओं को भी लिया गया है जैसे बेटों को (बेटियों को नहीं) पैतृक सम्पत्ति पर उनके जन्म के समय से ही अधिकार प्राप्त होता है। हालांकि ये अधिनियम यह भी सुनिश्चित करता है कि प्रथम श्रेणी की रिश्तेदार महिलाएं जैसे बेटियां, विधवाएं और मां, पूर्वजों की मृत्यु के समय पैतृक सम्पत्ति में से एक हिस्से की हक़दार होंगी। 2005 में, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में जो संशोधन किया गया था उसमें पहली बार हिन्दू बेटियों को उनके जन्म से ही पैतृक सम्पत्ति में अधिकार दिया गया। एक बेटी के पास बेटे के समान अधिकार हैं, जिसमें सम्पत्ति के विभाजन के समय बेटियों से पूछना अर्थात पूर्वजों के जीवनकाल के दौरान ही सम्पत्ति का विभाजन और अपना हिस्सा लेना भी बेटी के अधिकार में शामिल है। 2005 में किया गया यह संशोधन एक विवाहित या अविवाहित बेटी में कोई फ़र्क़ नहीं करता।

2005 में, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में किया गया संशोधन ऊपरी तौर पर तो बेटा या बेटी के समान अधिकार को दर्शाता है लेकिन वास्तविकता में यह संशोधन कुछ और ही कहता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

प्राथमिकता किसको?

- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 की धारा 15 (1) में एक हिन्दू महिला के स्वामित्व वाली सम्पत्ति के उत्तराधिकार में पत्नी के वारिसों, जैसे बहन या बहन के बेटे की अपेक्षा पति के वारिस जैसे भाई या भाई के बेटे को प्राथमिकता दी है। कोर्ट के एक मामले, ओमप्रकाश और अन्य बनाम राधाचरण और अन्य (2009) 15 एस.सी.सी. 66 में, तीन महीने की शादी के बाद एक महिला विधवा हुई। पति की मृत्यु होने के बाद उसे ससुराल से बाहर फेंक दिया गया और अपने माता-पिता के पास वापस भेज दिया। वह दोबारा अपने ससुराल लौटकर नहीं गई, फिर से शादी नहीं की और बच्चे भी नहीं थे। उसके माता-पिता ने उसे आगे पढ़ाया और उसे एक अच्छी नौकरी मिल गई और उसने कई सम्पत्तियां अर्जित की। मगर बिना वसीयतनामा बनाए उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मां ने सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए एक आवेदन दर्ज किया। उसके मृतक पति के रिश्तेदार (वही लोग जिन्होंने उसे ससुराल से बाहर कर दिया था) ने उसकी सारी सम्पत्तियों की मांग की। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15 (1) पति के वारिस को प्राथमिकता देता है, और पैतृक सम्पत्ति या स्वयं अर्जित की गई स्वअधिग्रहित सम्पत्ति के बीच अंतर नहीं करता है। महिला की सारी सम्पत्ति पति के वारिस को दे दी गई थी, उसके माता-पिता को नहीं जो उसकी देखभाल करते थे और जिन्होंने उसको आगे पढ़ाया था।

- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15 में यह प्रावधान है कि किसी हिन्दू महिला को अपने माता या पिता से विरासत में मिली कोई भी सम्पत्ति, मृतक के बेटा या बेटी के न होने की स्थिति में पिता के वंश या रिश्तेदारों जैसे भाई को सौंपी जाएगी न कि माता के वंश के वारिसों को।

- एच.एस.ए. संशोधन के रूप में स्वयं अर्जित सम्पत्ति (जो सम्पत्ति परदादा, दादा और पिता के माध्यम से विरासत में नहीं मिली है) पर लागू नहीं होता। एक बेटी को अपने माता या पिता की स्वयं अर्जित सम्पत्ति से मात्र एक वसीयतनामा बनाकर अलग किया जा सकता है। जब तक कि यह साबित नहीं हो जाता है कि सम्पत्ति विभाजित नहीं है तब तक वह संयुक्त मानी जाती है। सम्पत्ति का विभाजन हुआ या नहीं इसे साबित करने की ज़िम्मेदारी भी महिला पर ही होती है।

समय सीमा निर्धारित

- सर्वोच्च न्यायालय के एक मामले, प्रकाश और अन्य बनाम फुलवती और अन्य ए.आई.आर. (2016) सेक्शन 769 पर यह संशोधन पूर्वप्रभावी नहीं है। अतः एक बेटी अपने उत्तराधिकार के संबंध में, संशोधन का लाभ तभी प्राप्त कर सकती है, यदि उसके पिता की मृत्यु 2005 में संशोधित अधिनियम के प्रारम्भ होने के बाद हुई है।

कृषि सम्पत्ति पर अधिकार

- हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 ने 1956 अधिनियम की धारा 4 (2) को हटा दिया। जिसमें अधिनियम के दायरे से कृषि सम्पत्ति क़ानूनों पर छूट दी गई है। इस प्रावधान को हटाने से एक भ्रम को बनाया गया, कि क्या कृषि सम्पत्ति हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार है या नहीं? इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 2014 में (अर्चना बनाम समेक के निदेशक और अन्य) कहा था कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम कृषि सम्पत्ति पर लागू नहीं होगा। इस मामले में, पीड़ित महिला को पैतृक कृषि सम्पत्ति में किसी भी अधिकार से इंकार किया गया क्योंकि वह एक विवाहित महिला थी। उत्तरप्रदेश राज्य क़ानून, विवाहित महिलाओं और अविवाहित महिलाओं के बीच कृषि भूमि के हस्तांतरण में विभेद करती है, साथ ही अविवाहित महिलाओं को प्राथमिकता देती है। यह मामला भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सामने अपील में लंबित है और अंतिम निर्णय की प्रतीक्षा में है।

इसलिए 2005 का संशोधन बेटों और बेटियों को पैतृक सम्पत्ति में जन्म के समय से एक समान अधिकार देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, परन्तु क़ानून अपने मूल में महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि परिवारों में बेटियों को दी जाने वाली सम्पत्ति के नष्ट होने का डर रहता है। बेटियों की शादी होने का यह डर होता

है कि शायद शादी के बाद वह सम्पत्ति का अपना हिस्सा बेच देंगी और कहीं और निवेश करेंगी, जबकि एक बेटा सम्पत्ति या संसाधन परिवार के भीतर बनाए रखेगा। कई परिवार अपनी बेटियों को सम्पत्ति अभिलेखों/कागज़ों पर उनके भाईयों के पक्ष में हस्ताक्षर करने के लिए भावनात्मक दबाव डालते हैं। महिलाओं को अपनी पसंद के पुरुषों से शादी न होने देना भी सम्पत्ति चले जाने के रूप में देखा जाता है। अर्थात जो महिला अपने वैवाहिक साझेदार का चयन करने का आत्मविश्वास रखती है, वो सम्पत्ति के अधिकार का दावा करने के लिए भी आत्मविश्वास रखने की संभावना रखती है। हरियाणा के खाप पंचायतों द्वारा दिए जाने वाले आदेश (सम्मान हेतु हत्या) भूमि खो जाने के भय के साथ निकटता से जुड़े हैं।

इस संदर्भ में भारतीय महिलाओं पर इसके वास्तविक असर के साथ-साथ, हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून में संशोधन के परिणामों पर बहस, महिला आन्दोलनों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन तथ्यों को देखते हुए सम्पत्ति का अधिकार भारत में ज़्यादातर महिलाओं के लिए एक दूर का सपना ही प्रतीत होता है, इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ने की रणनीति तैयार करनी पड़ेगी। महिला आन्दोलन, महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए, बेहतर शिक्षा सुविधाएं, सुरक्षित कामकाज़ी परिस्थितियां, औपचारिक कर्मचारियों की संख्या से महिलाओं की निष्कासन (ड्रॉप-आउट) दरों को कम करवाना, घरेलू हिंसा से जीवित बची महिलाओं के लिए निवास के अधिकार को लागू करवाना, और निराश्रित महिलाओं के लिए बेहतर आश्रय गृहों की स्थापना करवाना जैसे तमाम मुद्दों को महिला आन्दोलन द्वारा यथार्थवादी लक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है।

लेखिका: **गायत्री शर्मा** *लगभग 12 वर्षों से वकालत और महिला सशक्तिकरण के मुद्दों पर काम कर रही हैं।*

अनुवाद: **अरिबन अबेम**

कविता

मैं भी हूं किसान

बीज लगाकर खेतों को मैंने भी सजाया है
कमर झुका निंदाई की, उपज को बढ़ाया है
लीप पोत कर कोठी में बीजों को बचाया है
कहे क्यों फिर लोग ये, कि मैं तो हूं किसान नहीं।

जन्मी जहां मैं, वो घर भी नहीं मेरा है
क़ानून कहे सम्पत्ति पर बेटी हक़ तेरा है
सब बोले ज़मीन लो तो भाई को गवांएगी
कैसा ये प्यार भाई रे जो खाए है ज़मीन मेरी। कहे क्यों ....

खेती करूं, घर संभालू काम का मेरे पार नहीं
बिन पैसे की मजदूर हूं मैं, आय का नाम नहीं
पति के रहमों पर रहूं, हक़ का निशान नहीं
कैसा ये न्याय पति रे, मैं क्या हूं इंसान नहीं।
कहे क्यों ....

न पट्टा मेरे नाम है, न क्रेडिट का ही कार्ड है
घर, बाड़ी, गाय भैंस कुछ न मेरे नाम है
रोज़गार के खाते पे भी उन्हीं का निशान है
रहूं क्यों गुमनाम मैं क्यों मेरा कहीं नाम नहीं

चारूल और **विनय** *के द्वारा सृजित "काम के हक़" गीत की लय पर आधारित*

लेख

महिला सम्पत्ति अधिकार: एक छलावा

महिलाएं सम्पत्ति पर दावा क्यों नहीं करती?

फ्लेविया एग्निस

1994 में बीना अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'ए फ़ील्ड ऑफ वन्स ओन' में लिखा— दक्षिण एशिया में महिलाओं को सम्पत्ति अधिकार से वंचित रखा जाता है। लेकिन यदि उनके अपने अधिकार वाला, ज़मीन का एक छोटा टुकड़ा हो तो वे स्वयं को अधिक सशक्त महसूस करती हैं। ऐसे में वे वैवाहिक जीवन में घरेलू हिंसा का मुकाबला अधिक मज़बूती से कर सकती हैं। हालांकि सम्पत्तिगत विरासतों के संचालन में विभिन्न धर्मों के अपने व्यक्तिगत क़ानूनों और सदियों से चली आ रही प्रथाओं का भी हाथ होता है। इसके अतिरिक्त हमारे पितृसत्तात्मक ढांचे के परिवारों में सम्पत्तिगत विरासतों हेतु महिलाओं के लिए कुछ योग्यताएं निर्धारित की जाती हैं।

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि महिलाएं स्वयं अपनी पारिवारिक सम्पत्ति पर दावा करने में असमर्थ हैं। इस सन्दर्भ में मानवविज्ञानी श्रीमती बासु ने एक महत्वपूर्ण अध्ययन किया। जिसके परिणामों को उन्होंने 1994 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'शी कम्स टू टेक हर राइट' (She comes to take her right) में लिखा है। यह अध्ययन दिल्ली में विभिन्न आर्थिक-सामाजिक स्तरों की महिलाओं के बीच किया गया और उन कारणों को सूचीबद्ध किया गया कि आख़िर क्यों महिलाएं अपने माता-पिता की सम्पत्ति में अपने अधिकार का दावा करने में हिचकिचाती हैं?

देखा जाए तो सम्पत्ति पर दावा करने की क्षमता औरत की निजी स्थिति पर निर्भर करती है जैसे- उसकी पारिवारिक संरचना और उसमें सामाजिक व्यवस्था आधारित उसकी भूमिका की स्थिति, वैवाहिक परिवार से समर्थन, महिला की आयु और उसकी परिवार पर निर्भरता आदि, जिनसे ये पता चलता है कि औरत सम्पत्ति में दावा करने की स्थिति में है या नहीं। श्रीमती बासु ने यह भी दावा किया कि जो महिलाएं सम्पत्ति अधिकार का दावा करती हैं, अधिकाशंतः उन्हें अपमानजनक संज्ञाएं (यानि लेवल) दे दी जाती हैं जैसे- "हक़ लेने वाली औरत" अर्थात् बुरी औरत।

एक दूसरा बड़ा कारण है, महिलाएं अपने वैवाहिक घर में हिंसा के ख़िलाफ़ अपने भाईयों द्वारा की जाने वाली सहायता को एहसान या सुरक्षा की तरह से देखती हैं। उन्हें लगता है कि अगर उन्होंने सम्पत्ति अधिकार की मांग की तो वे ये ढाल या सुरक्षा कवच खो देंगी। यह भावना उनमें असुरक्षा पैदा करती है और उन्हें अपने वैवाहिक घर में हिंसा का जोख़िम उठाने के लिए मजबूर करती है। क़ानूनी सहायता लेने की भी तमाम व्यवहारिक कठिनाइयां हैं। अदालत और वकीलों को लेकर आमतौर पर एक डर होता है, साथ ही दावा करने की लागत (कोर्ट कचहरी में लगने वाले पैसे) की भी चिन्ता। आमतौर पर मुकदमे इतने वर्षों तक चलते हैं कि जब तक मामला किसी परिणाम तक पहुंचता है, महिला जीवित ही नहीं रहती और यह भी निश्चित नहीं होता कि फ़ैसला उसके हक़ में ही होगा।

दक्षिण एशिया में दहेज प्रथा ऐसे मामलों को और जटिल बनाता है। यदि माता-पिता प्रचलित मापदण्डों के अनुसार दहेज देने में असमर्थ हों तो उन्हें दुल्हन के लिए वर खोजने के मौके कम हो जाते हैं। दूसरी ओर दुल्हन को दिए गए दहेज को उसके सम्पत्ति अधिकार के रूप में देखा जाता है। इसलिए अधिकाशंतः लड़कियों को ये सिखाया जाता है, या यूं कहें कि अपेक्षा की जाती है कि वे सम्पत्ति अधिकार के बारे में न सोचें और इस विचार को त्याग दें। लेकिन वास्तविकता यह है कि दहेज का सामान शायद ही कभी दुल्हन को मिलता हो, वो अपने गहने व अन्य कीमती

सामान अपने वैवाहिक परिवार के साथ साझा करती हैं। शादी टूटने की स्थिति में अधिकाशंतः मंहगी चीजों को दोबारा प्राप्त करने की संभावना कम ही रहती है।

महिला सम्पत्ति अधिकारों का ऐतिहासिक विकास

जब हम ऐतिहासिक रूप से धार्मिक क़ानूनों के तहत् महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों की जांच करते हैं तो ज्ञात होता है कि मुस्लिम महिलाएं अन्य धर्मों की महिलाओं की तुलना में अधिक सक्षम थीं। यहां तक कि उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ी महिलाओं की तुलना में भी उनकी स्थिति अधिक बेहतर थी। इस सन्दर्भ में 1867 में प्रिवि परिषद (प्रिवि परिषद राष्ट्र अध्यक्ष को सलाह देने वाली एक निजी समिति होती है जो गुप्त रूप से काम करती है) द्वारा एक महत्वपूर्ण फ़ैसला दिया गया। मुंशी बजलूर रूहैम शमशुन्निसा बेगम इसके महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालती हैं। यह मामला एक मुस्लिम महिला का था, जिसके पति ने उसकी सहमति के बिना शादी के समय लाई गई सम्पत्ति और कीमती चीजों को बर्बाद कर दिया। महिला ने उसको पुनः प्राप्त करने के लिए मुकदमे की शुरूआत की। प्रिवि परिषद ने फ़ैसला उसके हक़ में हो इसके लिए एक मसौदा तैयार किया— "मुसलमान और हिन्दू औरतों के अधिकारों के बीच अन्तर को स्पष्ट करना चाहिए, अर्थात सम्पत्ति अधिकारों के सभी तथ्यों के सन्दर्भ में। इसमें कोई शक नहीं है कि मुसलमान औरतें विवाह के बाद भी सम्पत्ति अधिकारों पर अपना प्रभुत्व रखती हैं और अपने पति के स्वामित्व नियंत्रण से मुक्त होती हैं। मुसलमान क़ानून, औरतों के लिए हिन्दू क़ानून से कहीं ज़्यादा अनुकूल है, जो महिलाओं की दूसरों पर निर्भरता पर ज़ोर नहीं देता।" अंग्रेज़ी क़ानून के अन्तर्गत एक महिला अपनी अलग सम्पत्ति पर अपना अधिकार खो चुकी है। हिन्दू क़ानून के अन्तर्गत महिलाओं का 'स्त्री धन' के रूप में एक सीमित अधिकार है। परन्तु मुस्लिम क़ानून के अन्तर्गत महिलाओं का विवाह के पश्चात् भी अपनी स्वयं की सम्पत्ति पर अधिकार ख़त्म नहीं किया गया है।

इसके अतिरिक्त शादी के समय मांगी गई मेहर राशि, जो दुल्हन का पति शादी के समय उसे देता है, उस पर महिला का एकल स्वामित्व होता है। कुरान में भी सम्पत्ति का एक निश्चित हिस्सा महिला के लिए निर्धारित किया गया है। यद्यपि यह पुरुष के बराबर नहीं था और न ही यह समानता के आधार पर था बल्कि यह समता के आधार पर निर्धारित हुआ। एक तथ्य यह भी है कि कुरान के अनुसार महिलाओं का सम्पत्ति अधिकार सातवीं सदी में स्थापित हुआ। इसकी तुलना में हिन्दू शास्त्रों में महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार नहीं है। वहीं हिन्दू संयुक्त परिवार (Hindu Undivided Family-HUF) के अनुसार, संयुक्त परिवार से पुरुष सदस्यों को ही सम्पत्ति का अधिकार मिलता है।

हालांकि औपनिवेशक काल (अंग्रेज़ी शासन काल) में महिलाओं के सम्पत्ति अधिकार से जुड़े कई मुकदमे दायर किए जाने का दावा किया गया। दूसरी ओर कुछ मुसलमान वर्ग ने यह भी दावा किया कि सम्पत्ति अधिकार में परिवर्तन के बाद भी बेटियों को पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखने जैसी हिन्दू प्रथाओं का पालन निरन्तर जारी हैं। औपनिवेशिक न्यायधीशों ने इस परम्परा को बरकरार रखा और धीरे-धीरे महिलाओं ने कुरान में लिखी सम्पत्ति का अधिकार खो दिया। 1937 में 'शरिया आवेदन क़ानून' जारी किया गया जिसके माध्यम से मुसलमानों को HUF यानि हिन्दू संयुक्त परिवार के महिला सम्पत्ति विरोधी नियमों को मानने से रोका गया। इसी दौरान 1937 में "हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिनियम" पारित हुआ। जिसने हिन्दू विधवाओं को अपने जीवन काल में पति की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया। इस अधिनियम में बेटियों का सम्पत्ति पर वारिस के रूप में कोई अधिकार नहीं था।

आखिर में 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिकार पारित किया गया, जिसमें बेटियों को अपने पिता की सम्पत्ति में

समान अधिकार दिया गया लेकिन हिन्दू संयुक्त परिवार की अवधारणा को ख़त्म नहीं किया गया। इस अधिनियम में पिता को भी अपनी इच्छानुसार निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है, जो प्रभावी रूप से बेटियों को उनके वैधानिक अधिकार से वंचित रखने के लिए किया गया। इस प्रकार यह अधिकारों की एक भ्रामक प्रस्तुति थी।

मुस्लिम महिलाओं के विरासत अधिकार

मुस्लिम महिलाओं के विरासत अधिकारों के एक अध्ययन— "रिश्तों और अधिकार में समझौताः मुस्लिम महिलाएं और विरासत" (Negotiating Right and Relationship: Muslim Women and Inheritance) में समाजशास्त्री नसरीन फ़जलभाय ने एक दिलचस्प तथ्य सामने रखा। उनके अनुसार यद्यपि मुस्लिम महिलाओं को सम्पत्ति उत्तराधिकार का एक श्रेष्ठ अधिकार है, लेकिन वे भी उसी प्रकार की बाधाओं का सामना करती हैं जैसी बाधाएं हिन्दू महिलाओं के सामने आती हैं। अन्तर बस इतना है कि हिन्दू महिला अपनी परम्परा और संस्कारों के कारण सम्पत्ति पर अधिकार का दावा नहीं करती, वहीं मुस्लिम महिलाओं का ये विश्वास होता है कि सम्पत्ति का अधिकार उन्हें क़ुरान से मिला है और यदि उनके भाई इस अधिकार से इंकार करते हैं तो वे धर्म का अपमान कर रहे हैं। इस अध्ययन से ये भी बात सामने आई कि मुस्लिम महिलाओं को हिन्दू महिलाओं की तुलना में अधिक अधिकार हैं लेकिन यह अधिकार भी धर्म द्वारा स्वीकृत किए जाते हैं। यही कारण है दोनों धर्म महिलाओं को अपने सम्पत्ति अधिकार पर दावा करने से रोकते हैं। दूसरी ओर दावा करने के बाद भी महिला की आयु, शादी, वित्तीय व भावात्मक संसाधन, जन्मजात परिवार में उसके भाई की बेटी, एकमात्र बेटी है, भाई और पिता का संयुक्त व्यापार है आदि कुछ ऐसे कारक हैं जो क़ानून के प्रभाव को कम करते हैं।

वैवाहिक सम्पत्ति-संयुक्त नाम की ज़मीनी हक़ीकत

भारत तथा कई अन्य यूरोपी और राष्ट्रमण्डल देशों में महिलाओं को उनके सम्पत्ति अधिकार से वंचित रखा जाता है। लेकिन जैसे कि अब तलाक़ की दर दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है ऐसे में शादी के दौरान अर्जित सम्पत्ति का विभाजन महिला के आर्थिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए और भी आवश्यक हो गया है। महिलाओं को जीवनयापन के लिए आर्थिक रूप से सहयोग प्राप्त करने का अधिकार तो है, लेकिन वह भी तभी संभव है जब महिला यह साबित कर सके कि वह स्वयं का जीवनयापन करने में आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है। सम्पत्ति पर पुरुषों का एकाधिकार होने के कारण महिला द्वारा अर्जित वैतनिक और अवैतनिक आय (घरेलू श्रम) आर्थिक सहयोग के रूप में नहीं देखी जाती, क़ानून भी इस सन्दर्भ में विचार नहीं करता है। वैवाहिक सम्पत्ति में संयुक्त नाम और तलाक़ के समय समान सम्पत्ति बंटवारा के विचार की सफलता अभी कोसों दूर है। हालांकि "घरेलू हिंसा क़ानून 2005" में महिलाओं को वैवाहिक गृह और माता-पिता के घर में रहने का अधिकार अवश्य दिया गया है।

विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा पति-पत्नी के संयुक्त नामों के साथ भूमि बंटवारे के कई प्रयास किए गए। पति अपनी पत्नी की सहमति के बिना सम्पत्ति को बेच नहीं सकता। परन्तु वास्तव में यह अधिकार केवल दिखावे के लिए है, असल में महिलाओं को इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि वे सम्पत्ति की संयुक्त रूप से मालकिन हैं। ज़मीन या सम्पत्ति की बिक्री के समय अधिकांश मामलों में यह देखा गया है कि महिलाएं पति की सहमति का विरोध करने की स्थिति में नहीं रहती।

हमारे अधिकांश गांवों में देखा गया है कि महिलाएं स्वयं को अपने पति (भगवान, स्वामी, यजमान, मालिक) की सम्पत्ति समझती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ में बैठे इस दृष्टिकोण को बदलना बेहद जटिल है। अतः जब तक शादी और परिवार के भीतर महिलाओं से जुड़े सामाजिक नियमों में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं होगा तब तक महिलाओं को सम्पत्ति अधिकार नहीं मिलेगा। वे अपने घरों में घरेलू हिंसा का शिकार बनी रहेंगी।

फ्लेविया एग्निस के अंग्रेज़ी लेख 'Women right to property continues to be illusory' का हिन्दी अनुवाद

लेखिकाः **सुश्री फ्लेविया एग्निस** *महिला अधिकारों की जानकार, वकील और मुम्बई की ग़ैर सरकारी संस्था 'मजलिस' की संस्थापक है।*

अनुवादः **सहबा सईद**

कहानी

मेरा कमरा और शहतूत का पेड़

हेमलता यादव

अपने कमरे के दरवाज़े से बाहर जाती शांति की आंखें धुंधली होती जा रही थी, सारा समां ही धुंधला रहा था पानी में डूबता हुआ, बाबूजी की आंखों में उतरे आंसुओं ने जैसे पूरी हवेली को डुबो दिया। बहुत कुछ कहना चाहते थे बाबूजी अपनी लाडली से लेकिन जसपाल के आगे अब वे बेबस हो गए थे। "मेरी लाडली मेरे हाथों में पली बढ़ी। मेरे दिल के टुकड़े के लिए इस हवेली में सिर छुपाने के लिए एक कोना तक नहीं" सोचकर बाबूजी के आंसू बहते जा रहे थे। लेकिन वे भी जानते थे कि अपने दोनों बेटों से मदद की उम्मीद करना- उम्मीद को धोखा देना है।

बाबूजी पुरानी यादों में खोने लगे—

"बाबूजी-बाबूजी मुझे ये मटकने वाली गुड़िया लेकर दो ना, कितनी सुंदर लग रही है। बाबूजी ये अपने आप कैसे हिल रही है।"

"बाद में लेंगे"।

"नहीं अभी .... अभी ....।" कहते हुए शांति ने रोना शुरू कर दिया।

"ये लड़की शांति नहीं अशांति है, रोज़ कुछ ना कुछ चाहिए।" बाबूजी ने झुंझलाते हुए कहा।

"आपने ही आदत बिगाड़ी है। अब संभालो अपनी लाडली को, दस साल की हो गई है लेकिन छोटे बच्चों सी जिद्द करती है। कल को दूसरे घर जाएगी तो यही लाड भारी पड़ेगा।" शांति की मां बाबूजी को उलाहना देती।

दो भाईयों जसपाल और वीरपाल के बाद शांति का जन्म हुआ सबसे छोटी, सबसे लाडली। इतनी सुन्दर कि जब बाबूजी ने नवजात शांति को गोद में लिया तो उन्हें लगा कोई परी अपने पंखों को समेटे उनकी गोद में आ गई है। बाबूजी की गोद में आते ही रोती परी शांत हो गई और बाबूजी ने उसका नाम रख दिया 'शांति'। शांति सोकर उठती तब तक उसके बाबूजी दफ़्तर चले गए होते इसलिए शाम को इंतज़ार रहता अपने बाबूजी का। दोमंजिला हवेली में ऊपरी मंजिल के दो कमरों में एक कमरा शांति के मां बाबूजी का था और कमरे के साथ सटा हुआ कमरा शांति का। एक छींक आने के बाद दूसरी छींक से पहले बाबूजी शांति के कमरे में दौड़कर पहुंचते और सोती हुई शांति को चादर उढ़ा देते कि कहीं ठंड न लग जाए। ठंड का इलाज शांति की मां के पास था लेकिन बाबूजी के लाड को काटने का मंत्र नहीं था। इस लाड ने शांति को लापरवाह और ज़िद्दी बना दिया। मां पढ़ने को कहती वो बाबूजी की गोद में छिप जाती। शांति के कमरे के साथ छज्जा, छज्जे पर बाबूजी की फुलवारी और वहीं से नीचे आंगन की ओर उतरती

सीढ़ियां। आंगन में शहतूत के पेड़ पर बारह मास शांति के लिए झूला लटका रहता, बाबूजी की छोटी सी फुलवारी में शांति हिरणी सी फुदकती रहती। बाबूजी को बागवानी का बहुत शौक था। हवेली में ऊपर से नीचे तक पौधे, बेल, फुलवारी लगी रहती। शांति का मन पढ़ने-लिखने में कभी नहीं लगा लेकिन बागवानी के सारे गुण बाबूजी से सीख लिए। दिन-ब-दिन बढ़ते खर्चों के कारण बूढ़ी और जर्जर हो चुकी हवेली की मरम्मत की गुंजाइश नहीं थी। अवकाश के दिनों में बाबूजी खुद ही रंग-रोगन लेकर हवेली पोतने लगते। बाबूजी और शांति ने मिलकर हवेली को छोटी बगिया में तबदील कर दिया था। बिस्तर पर पड़े बाबूजी के पास यही पुरानी यादें हैं। "कितना सच कहती थी शांति की मां जो अब दुनिया से चली गई, गृहस्थी के सब दुःख कट गए उसके, लेकिन मैं कैसे सामना करूं शांति का। कितनी उम्मीद से आती है मेरे पास। लेकिन अब मैं लाचार उसकी ज़िद्द तो क्या उसकी ज़रूरत भी पूरी नहीं कर सकता।" मजबूरी बाबूजी की आंखों से बहती हुई तकिए में समाती जाती। उम्र और लकवे की बीमारी से ज़्यादा शांति पर टूटे दुःख ने बाबूजी को अंदर तक तोड़ दिया।

उधर बाबूजी के कमरे से बाहर निकलते हुए शांति की हिम्मत नहीं हुई कि पलटकर बाबूजी को देखे। वो सीधी छज्जे से होती हुई सीढ़ियां उतरने लगी। एक नज़र अपने कमरे के दरवाजे पर लटकते ताले पर डाली। उसका कमरा अब उसका कमरा कहां रह गया था। अब वह पूरे घर का स्टोर रूम बन गया था। रह-रहकर उसकी आंखें अपने कमरे की तरफ उठती फिर सहम कर हाथ अपने बच्चे के सिर पर फेरने लगती। शांति के आंसू टपक रहे थे गर्मी की उमस में उसके शरीर से पसीने की बूंदे टपक रही थीं, और हवेली में शहतूत टपक रहे थे।

अंदर बाबूजी के कमरे से आती लड़ाई-झगड़े की आवाज़ें सुनकर शांति बिना कुछ कहे उलटे-पांव लौटने लगी। सीढ़ियों से उतरते समय बाबूजी के कमरे से आती जसपाल और वीरपाल की आवाज़ें मानो धकेल-धकेल कर उसे हवेली से बाहर खदेड़ रही थी।

"न बाबूजी ये न होने देंगे" जसपाल ने बाबूजी की तरफ़ आंखे तरेरते हुए कहा।

बाबूजी आप ही सोचिए हमारे आगे भी दो लड़कियां है आज अगर शांति जीजी को घर में जगह देंगे तो कल को वो भी मांगेगी कितने टुकड़े करेंगे हवेली के.....।

"मैं टुकड़े करने को कहां बोल रहा हूं बस उसका कमरा खाली कर दो, सब कबाड़ हटा दो उसके कमरे से, शांति अपने बच्चे के साथ उसी एक कमरे में रह लेगी। मुसीबत के वक्त हम साथ नहीं देंगे तो कहां जाएगी।" सबकी जोरदार आवाज़ों में बाबूजी की कांपती लड़खड़ाती आवाज़ को जैसे लकवा मार गया हो।

"अरे नाशपीटो केवल एक कमरे की बोल रहा हूं नीचे के सारे कमरों में तुम पसरे रहना। क्या एक कमरे में शांति को नहीं रहने दे सकते"। बाबूजी के सब्र का बांध टूट रहा था।

"आज अगर एक कमरा दिया कल उसकी औलाद अपना हिस्सा मांगेगी। पूरी ज़िंदगी का ठेका नहीं ले रखा।" वीरपाल दारू के नशे में चिल्ला कर बोला। बाबूजी की आवाज़ जसपाल और वीरपाल की चिल्लाहटो में दब गई। अब तक शांति हवेली के दरवाज़े से बाहर निकल आई। गली से मुड़ते हुए उसने पीछे मुड़कर हवेली की ओर देखा...

बाबूजी ने एक अच्छे बिज़नेस वाले से शांति का विवाह किया लेकिन पति की असामयिक मृत्यु ने शांति के जीवन को बिल्कुल उलट दिया। मन में आस और गोद में बच्चा लेकर अपने बाबूजी के पास अपनी हवेली के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई थी। मगर अब दरवाज़े पर खड़ी सोच रही थी... अपनी हवेली, नहीं-नहीं भाईयों की हवेली, नहीं बाबूजी

की हवेली, नहीं-नहीं दोनों की। कई सबक जो शांति स्कूल में नहीं सीख पाई अब ज़िंदगी सिखाने लगी। उसे अपनी ज़िम्मेदारियां और अधिकार भी समझ आने लगे।

"देखिए जसपाल भाईसाहब आपके बाबूजी ने कोई सरकारी विल तो बनाई नहीं थी जिस पर यह लिखा हो कि उनकी पुश्तैनी हवेली पर सिर्फ़ उनके दो बेटों का हक़ होगा और उनकी तीसरी संतान यानि आपकी बहन शांति को बेदखल कर दिया जाएगा। आप हवेली तोड़कर नया घर बनवाओ या मत बनवाओ- हवेली बेचो या मत बेचो पर तीसरा हिस्सा आपकी बहन का ही है," चड्ढा प्रॉपर्टी डीलर ने जसपाल को समझाते हुए कहा।

बाबूजी को गुज़रे हुए पांच महीने बीत गए थे और जसपाल और वीरपाल के पैरों तले ज़मीन खिसकी हुई थी ... ज़मीन क्या... उनके पैरों तले से हवेली ही खिसक रही थी। जो भाई मुसीबत में शांति को रहने के लिए एक कमरा देने को तैयार नहीं थे वे अब हवेली में हिस्सा देने की बात पर गुस्से से बेकाबू हो रहे थे। जसपाल ने कई बार शांति को बरगलाने की कोशिश की कि वह हवेली में अपने हिस्से की दावेदारी ख़ारिज कर दे। बच्चे के भविष्य और जीवन एवं रिश्तों के कठोर अनुभव ने शांति को हर लड़ाई के लिए तैयार कर दिया था। कभी जसपाल तो कभी वीरपाल शांति के किराए के मकान के सामने जाकर उससे लड़ते, लेकिन शांति ने अब ठान लिया था कि वह अपनी हवेली पर अपना हक़ नहीं छोड़ेगी। वही हवेली जहां जसपाल, वीरपाल के साथ उसका भी जन्म हुआ, उनके साथ उसका भी बचपन बीता।

अब भाईयों के सामने शांति से समझौता करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। जिला कोर्ट में एस.डी.एम. के समक्ष उसके नाम हवेली का तीसरा हिस्सा लिखा गया। उसकी शर्त बस इतनी थी कि छज्ज़े वाले कमरे को खाली करके उसे सौंप दिया जाए और यदि कभी भी हवेली को तोड़कर नया मकान या उसके भाई हवेली में अपना हिस्सा बेचना चाहे तो शहतूत वाला हिस्सा शांति के सुपुर्द हो। किसी भी क़ीमत पर शहतूत का पेड़ नहीं कटना चाहिए। एस.डी.एम. के ऑफिस में शांति का बयान चल रहा था, रिकॉर्डिंग हो रही थी, अंत में जज ने शांति के हक़ में, ज़मीन के पेपर पर सील लगा दी।

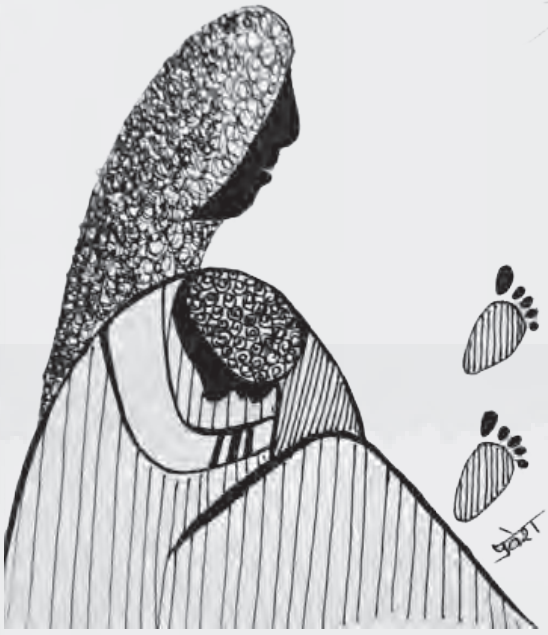

शांति आज अपनी हवेली में प्रवेश कर रही है। उसकी हवेली जहां उसने आंखे खोली, जहां उसने चलना सीखा, शहतूत की पत्तियों के झुरमुट में फुदकती गौरेयों सा फुदकना सीखा, आज उसे अफ़सोस नहीं कि वो अपने बाबूजी की बेटी बनकर क्यों जन्मी। हवेली में घुसते ही उसकी नज़र ऊपर अपने कमरे की तरफ़ उठी। जसपाल शांति को देखकर चुपचाप अपने कमरे में चला गया। शांति ने अपने बच्चे की उंगली को ढीला छोड़ दिया, बच्चा जल्दी से हाथ छुड़ाकर शहतूत के पेड़ की तरफ़ लपका और खेलने लगा। आंगन में गिरे शहतूत को उठाते हुए उसने अपनी मां की तरफ देखा लेकिन उसकी मां यानि शांति की नज़र ऊपर अपने कमरे की तरफ़ थी। शांति के आंसू टपक रहे हैं, गर्मी की उमस में पसीने की बूंदे टपक रही है और शहतूत टपक रहे हैं।

लेखिकाः **हेमलता यादव,** *स्वतंत्र रूप से लेखन और सामाजिक कार्यों में सक्रिय।*

लेख

स्त्री को माना सामान, भला सामान की स्वतंत्रता की भी बात हो सकती है क्या?

मैत्रेयी पुष्पा

अर्थ और आज़ादी का चोली दामन का साथ रहा है। कहते हैं जिसके हाथ में अर्थ होता है, उसी के हाथ में सत्ता होती है। ज़ाहिर-सी बात है अर्थ के ज़रिए सत्ता के सारे सामान खरीदे जा सकते हैं। ज़र, ज़मीन और जोरू पर अपना वर्चस्व जमाना, पुरुष ने अपना पहला अधिकार समझा और अपनी सारी एनर्जी (ऊर्जा) उन्हें हासिल करने में झोंक दी। ज़र यानि सामान, ज़मीन यानि खेत और जोरू यानि औरत, तीनों को ही सामान माना गया। भला सामान की स्वतंत्रता की भी कोई बात हो सकती है क्या? वही सोचकर पुरुष स्त्रियों की आज़ादी की बात पर हंसता है या चिढ़ता है। आज से नहीं, स्त्रियों के श्रम पर अगर शुरुआत से ही नज़र डालें तो स्त्रियों के हिस्से पुरुषों से ज़्यादा ही काम आया है। बस, उसके श्रम पर पुरुष ने अपना अधिकार माना। खुद उसे अपने श्रम से उपजी पूंजी पर अपना अधिकार जमाने का हक़ नहीं मिला। दिन भर खटने के बाद जो दो रोटी उसे मिली, वह भी सबके खा लेने के बाद, अगर बचे और जितना बचे तो उसे अपने स्वामी का इसके लिए शुक्रगुज़ार होना सिखाया गया।

स्त्री संतुष्ट है, बटुए में कुछ रुपए, आंचल में खोंइचा-बायना, इसके अलावा नाक-कान के कील-कांटे, पायल, बिछुया, अंगूठी-चेन, साड़ी-ब्लाऊज, शॉल-स्वेटर स्त्रीधन है। कभी-कभी गाय-भैंस, बकरी भी बहन-बेटी को मिल जाती है। मैं ऐसे में अगर कुछ हटकर बात करूं तो उन कर्कश और दुष्ट स्त्रियों में शुमार पाई जाऊंगी, जो इतना सब मिलने के बावजूद हक़ की बात करती हैं। कैसा हक़ अब, कौन-सा हक़? यह सवाल मुझसे वे ही करेंगी, जो स्त्रियों के हक़ का प्रतिनिधित्व कर रही हैं और स्त्रियों को समझा रही हैं— अपने समाज में वे गलत धारणा बनाए बैठे हैं, जो रीति-रिवाज़ों का मर्म नहीं जानते। भाई-दूज, रक्षाबंधन ऐसे अवसर हैं, जब बहन को भाईयों पर गर्व रहता है। मायके में धन सम्पत्ति बढ़ने पर वह अपने आपको ससुराल में मज़बूत समझती है।

हमारे समाज में पिता की सारी सम्पत्ति अपने कब्ज़े में रखकर भाई जिस तरह बहन को खोंइचा, भाईदूज या भात और पक्ष देकर बहलाता रहता है, क्या अपने भाई को वह नेग देकर संतुष्ट कर सकता है? एक बहन एक भाई की जगह अगर दो भाई ही हों, तब फिर एक को पूरी सम्पत्ति और दूसरे को खोंइचा, भाईदूज का नेग या राखी के पैसे देकर देखिए तो ज़रा। लड़ाई-दंगे, खून-खराबे, मुकदमा-कचहरी का दृश्य न बने तो मुझसे कहिए। दरअसल बेटे को शुरू से बताया जाता है कि वह घर, ज़मीन और चल-अचल सम्पत्ति का हक़दार है, जितने भी बेटे हों, सबका हिस्सा है। बेटी को समझाया जाता है कि वह जहां पैदा हुई है, शादी तक की मेहमान है। ये बातें लड़की का पिता कहता है, जो बेटों को जमाने और बेटियों को उखाड़ने का विनम्र ऐलान करता है। मां कुल-परिवार की रीति को चलाने की सीख देती है।

यहां सवाल यह भी उठता है कि लड़की जिस घर जाती है, क्या उस घर में हिस्सा उसे मिलता है? पति जिंदा रहे, तब तक नहीं मिल सकता। पति न रहे और बेटा बालिग हो जाए तो भी हक़ खटाई में पड़ जाता है। एक बात यह

भी है कि लड़का विवाहित होता है, ससुराल से जो कुछ खींचता है, उसके अलावा पिता की सम्पत्ति में से तिनका भर भी नहीं छोड़ता।

समाज कहता है कि स्त्री के दो-दो घर होते हैं। बेशक होते हैं, मगर पाया गया है कि इन दो-दो घरों में से उसका अपना एक भी घर नहीं होता। ससुराल में प्रताड़ना की मारी जब वह ख़ुद मायके भागती है तो मायके वालों को अपनी नाक-मूंछ कटती दिखाई देती है। मेरी बात से आप सहमत हो सकें तो मान लें कि स्त्री को ससुराल और मायके से लिवा लाने की तरह कोई भाई अपने भाई को लिवाने क्यों नहीं जाता? बेटी को लिवा लाने वाला पिता क्या किसी बेटे को लिवाने जाता है? या यह नियम लागू होता है कि जब तक कोई लिवाने न जाए, बेटा या भाई आए नहीं? आने-जाने के मामले में पुरुष स्वतंत्र हैं। इन लोकाचारों से ही यह बात निकलकर आती है कि सारे अच्छे नियम स्त्री को रोकने, बांधने के लिए बनाए गए हैं। नहीं तो ग़ौर करिए कि विवाह के बाद दोनों पक्ष स्त्री की क्या दशा करते हैं।

मैं मानती हूं कि हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून में जो संशोधन किया गया है, वह सराहनीय है, यदि इसे व्यवहार में लाया जाए तो दहेज की भीषण समस्या समाधान की ओर बढ़ेगी, मगर फिर वही कि स्त्रियों में ही यह भावना घर किए बैठी है कि भाई से हिस्सा बंटाने वाली बहन डायन होती है।

बहनों, मायका तभी तक बना रहता है, जब तक कि तुम अपने हिस्सों को भाईयों के हवाले किए रहती हो। क्या औरत, जो अपना हक़ छोड़ती चली जाती है, समझती है कि वह स्नेह की पुतली है। नहीं मानना चाहती कि यह स्नेह नहीं, सीधा-सादा सौदा है, जो भाई के रूप में एक पुरुष भाई अपनी बहन स्त्री से करता है और बहन जो खोंइचा खाने में मस्त रहती है, भले कहीं की न रहे।

मैं यह जानती हूं कि मेरी इन बातों पर संबंधों के चलते जीवन मूल्यों के हनन का आरोप लगेगा, जैसे कि क़ानूनी अधिकार मांगने पर लोकाचारों की जड़ें हिलने लगेंगी, मगर यह भी तो होगा कि समाज में रीति-रिवाज़ों को लकीरों की तरह न पीटा जाए। व्यवहार की तरह बरता जाए। ज़ाहिर सी बात है कि पैतृक सम्पत्ति में से हिस्सा कट जाने पर भाई लोग नेगों के दस्तूर निभाते जाएं, जरूरी नहीं। तब फिर बहन से भी ऐसा संबंध रहना चाहिए जैसा भाई और भाई का रहता है। हिस्सेदार का हिस्सेदार से होता है। इसमें शुरूआत में भले स्वार्थ झलके, मगर ढोंग भी तो नहीं रहेगा। माना कि पुराने विधानों में ज़बरदस्त टूट-फूट होगी, मगर टूट-फूट के बिना कुछ नया कैसे बनेगा।

पुस्तक साभार 'चर्चा हमारा' से एक लेख के कुछ अंश

लेखिका: **मैत्रेयी पुष्पा** *हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी लेखनी में ग्रामीण भारत का चित्रण किया है।*

कविता

बेटी का हिस्सा

रीता गुप्ता

मां- बापू और हे समाज,
तुमसे मेरा है, प्रश्न आज।
बेटी पराई बेटा मेरा,
किस कुमति ने तुमको घेरा।

बेटे को स्वावलम्बी बनाया,
अपना सर्वस्व दे डाला।
बेटी को कर दिया विदा,
कहते गंगा नहा आया।

वाह रे! समाज क्या खूब है तू
और तेरे तुच्छ नियम।
बेटे के लिए सब कुछ,
बेटी को मात्र संयम।

शर्मनाक है सोच ये,
और ऐसी विचारधारा।
बेटा-बेटी का अन्तर कैसा,
करो बराबर बंटवारा।

दो सम्पत्ति में बेटी को हिस्सा,
नहीं तो, छीना जाएगा।
एक सुझाव है, नहीं चुनौती,
जो न माना पछताएगा।

रीता गुप्ता, *मदनगीर नई दिल्ली*

PROPERTY
– FOR HER –

डिजाइनः एक्शन ऐड

WOMEN'S ECONOMIC
INDEPENDENCE
REDUCES INCIDENCE OF
VIOLENCE
Words by Kamla Bhasin. Designed by Aman Bhardwaj
#PROPERTYFORHER

शब्दः कमला भसीन, डिजाइनः मस्तराम

शब्दः कमला भसीन, डिजाइनः नस्तासिया

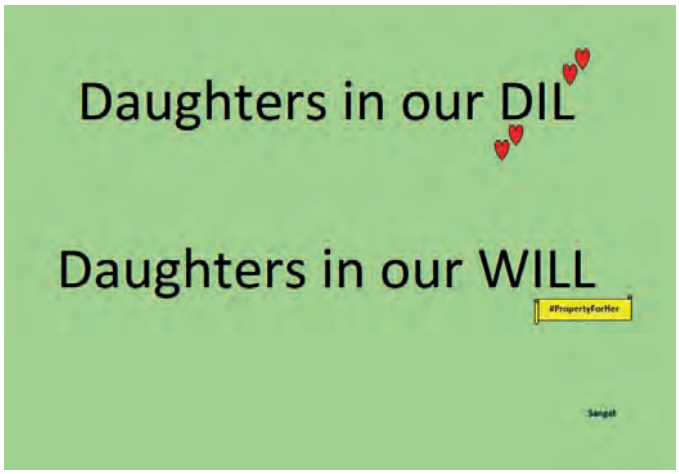

शब्दः कमला भसीन, डिजाइनः निधि गुप्ता

जब बेटी को दी जगह दिल में
फिर बेटी क्यों नही है WILL में
#propertyforher
Words by Kamla Bhasin. Designed by Sijya Gupta

Our son & daughter
share responsibility,
and they will also
share our property.
#PropertyForHer
Words by Kamla Bhasin. Designed by Aman Bhardwaj

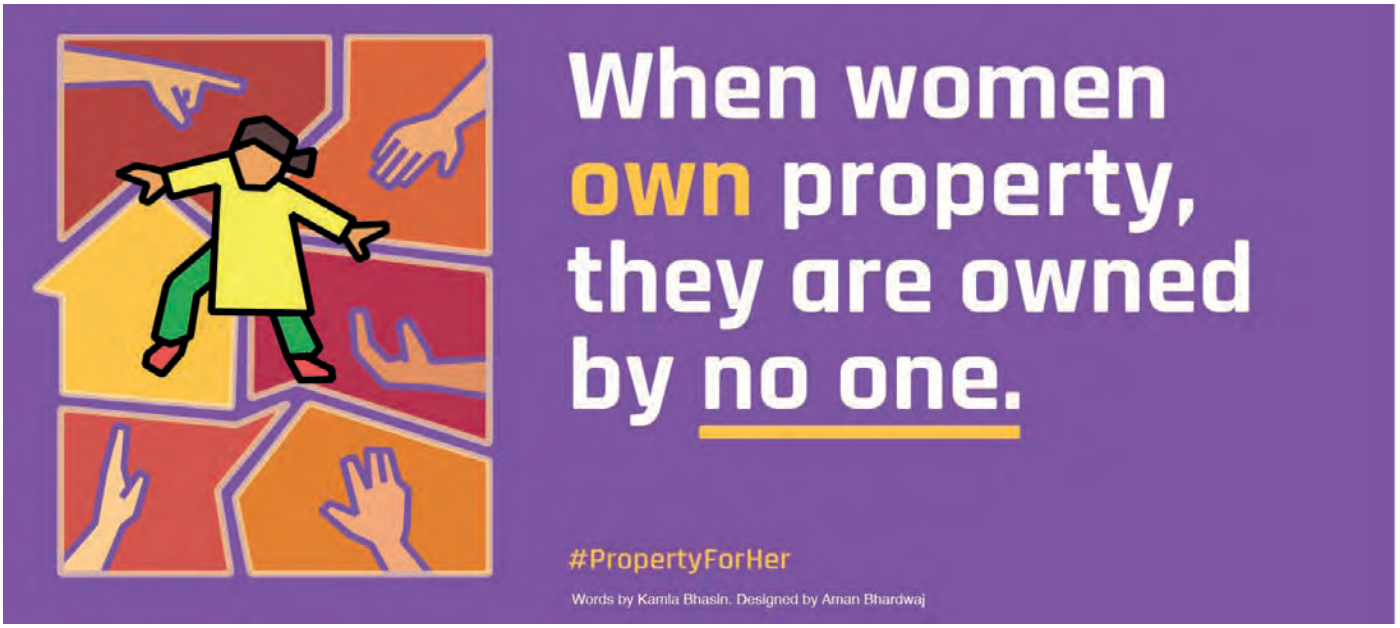
When women
own property,
they are owned
by no one.
#PropertyForHer
Words by Kamla Bhasin. Designed by Aman Bhardwaj

लेख

जायदाद के सवाल पर मर्दों में एकता है!

शीबा असलम फ़हमी

भारत की मुस्लिम महिलाओं के सम्पत्ति पर अधिकार के सवाल को भारत की बहुसंख्यक महिलाओं की स्थिति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। पितृसत्ता ने सभी महिलाओं को सम्पत्तिहीन बनाए रखने में बड़ी भूमिका अदा की है। लेकिन मुस्लिम महिलाओं के साथ कुछ और भी कारण जुड़ जाते हैं उन्हें निर्धनों में सबसे निर्धन बनाने में। भारतीय मुस्लिम समुदाय, देश के सब से निर्धन समुदायों में से एक है। 2005 की सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने खुलासा कर दिया है कि ये समुदाय न सिर्फ़ ग़रीब, अशिक्षित, और सत्ताहीन हैं, बल्कि ये लगातार और ज़्यादा पिछड़ रहे हैं। यानि जहां बाकी समुदाय आगे बढ़ रहे हैं वहीं भारतीय मुस्लिम समुदाय सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक कारणों से बढ़त नहीं बना पा रहा है। ऐसे में सम्पत्ति का सवाल, बंटवारे का सवाल, मालिकाना हक़ का सवाल कितना मायने रखता है समझा जा सकता है। मुसलमानों की सम्पत्तिधारी जनता की संख्या इतनी छोटी है कि इस पर कोई बड़ा शोध जैसे भूसे के ढेर में सूई ढूंढने वाली बात होगी।

1947 में उत्तर भारत के सामंती, हैसियतदार और शिक्षित परिवार बंटवारे के दौरान सरहद पार कर गए। उनकी जायदादें देखभाल करने वाले के (कस्टोडियन) हिस्से में चली गयीं। समाज के मलाईदार वर्ग का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही बचा। उच्च और मध्यम वर्ग के अभाव में भारतीय मुस्लिम समाज कई दशक तक एक, लम्बे शून्य से गुज़रा है जब नेता के नाम पर उसके पास कुछ कांग्रेसी परिवार थे, और धनाढ्य वर्ग के नाम पर कुछ व्यापारिक घराने, जो यहां से कारोबार समेट न सके। बाकी बचा पेशों से जुड़ा पसमांदा समाज जिसकी संख्या तो करोड़ो में थी लेकिन सम्पत्ति नाम मात्र भर। और आज के राजनैतिक मुहावरे में जिसे 'पसमांदा समाज' कहते हैं, जो हिन्दू समाज के पिछड़े और दलितों का समानवर्गी समाज है। दरअसल ये वही मूलनिवासी भारतीय हैं जो हिन्दू समाज में 'बुनकर' 'माली' 'नाई', तो मुस्लिम समाज में 'अन्सारी', 'बागबान', 'सलमानी' आदि कहलाते हैं। पसमांदा मुस्लिम समाज में पिछले 3-4 दशकों से एक विकासशीलता आई है। शहरी मध्यमवर्ग में इनकी मौजूदगी दर्ज की जा सकती है। समय के साथ शिक्षा, रोज़गार, आधुनिकीकरण ने इन्हें राष्ट्रनिर्माण के हाईवे पर पहुंचा दिया है। बंटवारे के 70 साल बाद अब दोबारा एक मिडल क्लास पैदा हो रहा है जो शिक्षा और रोज़गार में अपनी जगह बना रहा है।

ये तो है सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य, इसके अलावा एक और आयाम है, मुस्लिम पर्सनल लॉ का, जिसको बहस

में लाना चाहिए, क्योंकि भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ लागू है। अतः इस्लाम धर्म के तहत मुस्लिम बेटियों-बीवियों-माओं को अपने पुरुष रिश्तों की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा इस्लाम धर्म मुसलमान महिला को अपनी स्वयं की सम्पत्ति अर्जित करने और उसके सम्पूर्ण मालिकाना हक़ की भी इजाज़त देता है, जिस पर कोई पुरुष रिश्तेदार दावा नहीं कर सकता। ये एक आदर्श स्थिति है, लेकिन बेटियों को पिता की जायदाद में जो हक़ है वो उन्हें स्वतः ही मिल जाए, इसके लिए उन्हें दावा न करना पड़े, भाईयों से मुकदमा न लड़ना पड़े और ये एक सामाजिक 'कॉमन सेंस' या व्यवहार बन जाए ऐसी आदर्श स्थिति से भारत का मुस्लिम समाज उतना ही दूर है जितना बहुसंख्यक हिन्दू समाज। यानि पितृसत्ता के मर्दवादी व्यवहार को 1400 साल में न धर्म बदल सका है न 60 साल से लागू आधुनिक क़ानून व्यवस्था। (इसका ये मतलब भी नहीं है कि किसी भी मुसलमान महिला को सम्पत्ति में हक़ मिलता ही नहीं, लेकिन ज़्यादातर को नहीं मिलता)।

कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त तबका अपनी मर्ज़ी, भलमनसाहत, नैतिकता से प्रेरित होकर अपने सुख-फ़ायदे वंचितों की झोली में नहीं डालता। ये इतिहास में कभी नहीं हुआ है। तीन तलाक़ को जारी रखने के पक्ष में जिन मौलानाओं ने बेशर्मी से 10-12 लाख मुसलमान महिलाओं के हस्ताक्षर 20-25 दिन में करवा लिए, उन मौलानाओं से पूछिए कि कभी विरासत-जायदाद में बेटी-बहन को हक़ देने के लिए कोई मुहिम चलाई है? दहेज-विरोधी कोई मुहिम चलाई है? बात साफ़ है कि ऐसी कोई मर्दवादी बुराई नहीं जो भारतीय हिन्दू-मुसलमान मर्दों में बराबर से न हो। इसके बावजूद धार्मिक और क़ानूनी हक़ों की जानकारी और महिलाओं के सशक्तिकरण ने मुसलमान महिलाओं को जागरूक किया है। अब वे 'स्वेच्छा' से अपने हक़ को छोड़ना नहीं चाहतीं हैं।

बहन-बेटियों के पास पैतृक सम्पत्ति का सम्बल उन्हें मायके, ससुराल, कार्यालय आदि हर जगह अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का नैतिक बल देता है। खुद को आर्थिक रूप से मज़बूत महसूस करने वाली या वाला, अपने आत्मसम्मान, चरित्र-सम्मान और देह-सम्मान पर आंच नहीं आने देता। अगर आप अपनी बेटी को इस सम्बल के साथ दुनिया का सामना करने भेजते हैं तो आप न सिर्फ़ अपना फर्ज़ अदा कर रहे हैं बल्कि अपनी बेटी को एक सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा कवच भी दे रहे हैं। इसको जायदाद के बंटवारे के तौर पर नहीं, बल्कि सबलीकरण के तौर पर देखें, तो ये बात पुरुषों को भी अपने ही पक्ष में लगेगी। मज़बूत बेटी आपकी चिंताओं और भविष्य की समस्याओं को कम करती है।

परिवार में जो भी सम्पत्ति है, कम या ज़्यादा, जिस तरह भाईयों में बंट जाती है उसी तरह उसमें बहन को भी शामिल किया जा सकता है। भारतीय बहनों-बेटियों के बलात्कारों से हकबकाया समाज, क्या अब भी अपने दायित्व निभाने की नैतिकता अपनाएगा? क्या उन्हें मज़बूत नागरिक बनने में योगदान देगा? क्या बिना मुकदमा लड़े बेटियां अपना हक़ पाने लगेंगी? ये वो सवाल हैं जो हिन्दू-मुसलमान के फ़र्क़ के बिना हमारे सामने हैं।

लेखिकाः **शीबा असलम फ़हमी** *एक नारीवादी लेखक, पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। वे भारतीय मुस्लिम महिला विद्वानों में से एक हैं जो इस्लाम (अन्य मुद्दों के बीच) पर लिखती हैं।*

—◆◆◆—

कविता

अधिकार तुम्हारा कैसे?

कोख में खून से सींचू मैं,
बच्चे पर अधिकार तुम्हारा कैसे?

घर की देख-भाल करूं मैं,
घर पर अधिकार तुम्हारा कैसे?

मकान की किश्तें चुकाऊं मैं,
सम्पत्ति पर नाम तुम्हारा कैसे?

बूंद-बूंद जुटाऊं, बिना दाम की मजदूरी करूं मैं,
बेचने खरीदने का अधिकार तुम्हारा कैसे?

खेत, खलिहान, बीज और भण्डार सुरक्षित रखूं मैं,
किसान कहलाने का हक़ तुम्हारा कैसे?

रेवा चौबे, *महिला समाख्या, उत्तर प्रदेश*

महिला हिंसा का कारण है: सम्पत्ति

कमला भसीन

कमला भसीन एक नारीवादी कर्मी, कवयित्री व लेखिका हैं। वे लगभग 45 सालों से सामाजिक, लैंगिक असमानता, शिक्षा और सतत् विकास के मुद्दों पर काम कर रही हैं। यहां हम उनसे हुई बातचीत का एक छोटा अंश प्रस्तुत कर रहे हैं।

सवाल— आखिर महिलाओं के साथ इतनी हिंसा क्यों होती है?

जवाब— इसका सबसे मुख्य कारण है हमारी पितृसत्तात्मक सोच, जिसमें पुरुष को स्त्री से उत्तम माना जाता है और जिसमें सम्पत्ति, निर्णय शक्ति और विचारधारा पर पुरुषों का अधिक नियंत्रण होता है। पितृसत्ता में यह माना जाता है कि स्त्री को हमेशा किसी पुरुष के अधीन होना चाहिए। बचपन में पिता के, शादी के बाद पति के और अगर पति की मृत्यु हो जाती है तो अपने पुत्र के अधीन। इसी पितृसत्तात्मक विचारधारा के कारण हम पति, स्वामी, मजाज़ी ख़ुदा जैसे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। जिस व्यक्ति से औरत की शादी होती है, वह हमारा मालिक होता है। हिन्दू समाज में पिता कन्या का दान करके अपनी बेटी को उसके नए मालिक के हवाले कर देता है। शादी से पहले लड़की अपने पिता के नाम से जानी जाती है, शादी के बाद, अपने नए मालिक यानि पति के नाम से उसकी पहचान होती है। हमारा मानना है कि पितृसत्ता में महिलाओं और लड़कियों पर हिंसा ढांचागत है। हिंसा या हिंसा के डर से महिलाओं को काबू में रखा जाता है।

महिलाओं पर हिंसा का एक और कारण है, आर्थिक रूप से महिलाओं का आत्मनिर्भर न होना। बेटियों को "पराया धन" माना और कहा जाता है। सम्पत्तिवान परिवारों में पुश्तैनी सम्पत्ति बेटों को दी जाती है। बेटियों का अपना कोई घर नहीं होता इसलिए शादी करना लड़कियों के लिए ज़रूरी हो जाता है। पितृसत्तात्मक सोच और तौर-तरीके लड़कियों को दूसरों पर निर्भर बना डालते हैं। आत्मसम्मान स्वावलम्बन जैसी भावनाएं लड़कियों में पैदा ही नहीं होने दी जाती।

सवाल— क्या कन्या भ्रूण हत्या के पीछे भी यही कारण है?

जवाब— बेटियों की भ्रूण हत्या के पीछे एक बड़ा कारण है दहेज। बेटी को दहेज देना पड़ेगा इसीलिए बेटी को पैदा ही नहीं होने देते। दहेज की प्रथा ने शादी को एक व्यापार बना दिया है। शादी के बाद भी कुछ परिवारों में लड़की के परिवार से "मांगना" चलता रहता है। अगर लड़की के घर वाले नहीं दे पाते तो नवविवाहिता पर हिंसा होती है। दुःख और शर्म की बात यह है कि एकजुट होकर दहेज ख़त्म करने की जगह हम बेटियों को मार रहे हैं।

सवाल— पहले सती प्रथा का चलन था क्या उसका भी जुड़ाव सम्पत्ति अधिकार से था?

जवाब— जी हां पैसा या यों कहें सम्पत्ति। पति के मरने पर पत्नी क्यों उसके साथ सती होती थी? इसलिए ताकि विधवा पत्नी पति की सम्पत्ति में हिस्सा न मांगे।

पंजाब में अभी भी कहीं-कहीं एक ओर हिंसा होती है। पति की मृत्यु के बाद पत्नी की शादी देवर से करा दी जाती है जिससे महिला सम्पत्ति में अपना हिस्सा लेकर कहीं और न जाए। दूसरा, हिंसा का जुड़ाव है स्त्री के पास सम्पत्ति न होना। जैसे अगर शादी हुई जिसमें स्त्री के साथ हिंसा हो रही है ऐसे में वो कहां जाए, महिला आश्रम या कहां? उसके पास कोई ठिकाना नहीं होता जहां वो जा सके।

इसलिए वह हिंसक वैवाहिक जीवन में रहने को मजबूर होती है। माता-पिता, भाई, लड़की की शादी होने के बाद मुक्त हो जाते हैं। कहते हैं हमने तो गंगा नहा लिया।

सवाल— इन परिस्थितियों में उपाय क्या है महिला हिंसा से कैसे बचा जा सकता है?

जवाब— यदि लड़की का अपना घर हो तो वो हिंसक वैवाहिक रिश्ते में नहीं रहेगी। इसलिए हम लोग समाज से मांग करते हैं आप लड़कियों की शादी में बहुत पैसा न खर्च करें, दहेज न दें। आप अपनी बेटी को एक कमरे का घर/फ्लैट दे दें। अगर आप अपनी बेटी को प्यार करते हैं तो उसे सम्पत्ति में अधिकार दीजिए।

हमारा नारा है—

बेटी को दिल में, बेटी को विल में।

हालांकि इन सब में लड़कियों की भी गलती है। वो पिता की सम्पत्ति या व्यापार को जानने की कोशिश ही नहीं करती। इसका भी एक कारण है क्योंकि लड़कियों को शुरू से सिखाया जाता है, ये तुम्हारा काम नहीं। लेकिन अब लड़कियों को अपनी सोच बदलनी होगी। उन्हें पिता के व्यापार और सम्पत्ति के कामकाज में भाग लेना चाहिए। दूसरी बात, अब तक लड़कों पर ये दबाव था कि वे पैसा कमाएं, लेकिन अब लड़कियों को भी पैसा कमाने के लिए आगे आना चाहिए। क्योंकि अगर अधिकार चाहिए तो ज़िम्मेदारी भी उठानी होगी। इस क़दम से लड़का-लड़की दोनों को फ़ायदा होगा। लड़कियां भी आज़ाद होंगी और लड़के भी।

हमारा संविधान स्त्री-पुरुष समानता की बात करता है। अपने परिवारों, समाजों व देश में समानता लाना हम सबका कर्तव्य है। हम सबको अपने विचारों और व्यवहारों को बदलना है और हर प्रकार की समानता लानी है।

लिप्यंतरणः **ममता पाठक**

—◆◆◆—

कविता

बेघर अब न रहेंगे

कमला भसीन

बेघर न अब हम रहेंगे,
हमने तय कर लिया है।
डर-डर न अब हम जियेंगे,
हमने तय कर लिया है।

नाम घरवाली पर
घर के न घाट के
डर-डर के जीते जैसे
नौकर हो लाट के।
परजीवी न अब हम रहेंगे।
हमने तय कर लिया है।
बेघर न अब हम रहेंगे।
हमने तय कर लिया है।

अपना हो घर तो,
चले मर्ज़ी हमारी।
हमसे न सहे मारपीट,
नहीं सहे गारी।
हिंसा न अब हम सहेंगे,
हमने तय कर लिया है।

अपना हो घर तो होंगे,
खुशहाल बच्चे।
रिश्ते बनेंगे बराबर के
सच्चे।
मेहमान बन के न रहेंगे,
हमने तय कर लिया है।
बेघर न अब रहेंगे

मां-बाप से लेंगे घर
भाईयों से लेंगे
बदले में उनको
सुरक्षा हम देंगे
न बनके पराए रहेंगे
हमने तय कर लिया है।
बेघर न अब हम रहेंगे।

कहानी

समानता की राह पर

कुलीना कुमारी

शादी के क़रीब 15 साल बाद पाई-पाई जोड़कर ज़मीन का एक छोटा टुकड़ा खरीदा था पति-पत्नी ने। हिम्मत ने जानबूझकर ज़मीन पत्नी कांति के नाम पर ली थी ताकि रजिस्ट्री में छूट मिले। सब खुश थे मगर उनकी दस वर्षीय बेटी बहुत दुःखी थी। हुआ यह कि ज़मीन पर घर बनाने के लिए पूजा केवल बेटे से ही करवाई गई। यह बात दस वर्षीय बेटी रानी समझ नहीं पा रही थी कि जब मां-बाप के दोनों ही बच्चे हैं तो पूजा का अधिकार सिर्फ़ उसके भाई को क्यों मिला? उसके इस सवाल पर उसके चाचा ने बोल दिया "वो इसलिए कि ज़मीन-घर तेरे भाई का होगा क्योंकि वह लड़का है। लड़कियों का नहीं होता।"

इतना सुनना था कि वह सबसे पहले अपने पापा के पास गई, "पापा-पापा, मैं भी आपकी बच्ची हूं ना, आप मुझे भी घर देंगे ना?"

बेटी के इस प्रश्न ने उनके अंतरमन को चोटिल कर दिया। वे बेटी को दुःखी नहीं करना चाहते थे तो यह प्रश्न अपनी पत्नी पर फेंक दिया और कहा, "ज़मीन तो तेरी मम्मी के नाम से है उन्हीं से बात करो, मेरे पास तो कुछ है नहीं जो तुम्हें दूंगा।"

पापा से ऐसा सुनकर उसे लगा कि उसकी मम्मी उसके साथ भेदभाव कर रही है? मम्मी के पास आकर उसने ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया व रोते-रोते अपनी मम्मी से बोली, "मम्मी, आप मुझे भी घर दो, जो भाई को मिलेगा, वो सब मुझे भी चाहिए।"

बेटी का रोना कांति के मन को चीरने लगा। उसे लगा, "क्या बेटी की यह मांग गलत है, वह बराबर का हक़ ही तो मांग रही है। जब पढ़ाई में समानता, खानपान-परवरिश में समानता तो सम्पत्ति के बंटवारे में ही विभेद क्यों?"

कांति यह सब सोच ही रही थी कि उसकी बेटी उसका आंचल पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से बोली," बोलो न, बोलो न

मम्मी, मेरा भी घर होगा न, तुम दोगी न!" कांति टालने के उद्देश्य से बोली, "अभी तो घर बनने दो, बाद में देखेंगे।" "नहीं, मुझे अभी से चाहिए, बाद में नहीं... बताओ... बताओ।" बेटी पीछे ही पड़ गई थी, कांति बोली ठीक है ज़रा सोचने का समय दो, बाद में बताती हूं।" बेटी रोते-रोते बेड की तरफ चली गई और बोलती जा रही थी, "कोई मुझसे प्यार नहीं करता, सब भाई से ही करते हैं... तभी भाई को घर मिल रहा है, मुझे नहीं... मैं समझ गई, सब बुरे हैं... मेरा कोई नहीं।"

यह सब देख-सुन कांति और बेचैन हो गई। बेटी तो रोते-रोते सो चुकी थी मगर उसे नींद नहीं आ रही थी।

उसके मन में मंथन चल ही रहा था कि तभी फ़ोन की घंटी बज उठी। कांति ने फ़ोन उठाया दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई "कैसी हो कांति, मैं कात्यायनी... वहां सब अच्छा तो है न, तुम्हें प्लॉट पर पूजा की बहुत-बहुत शुभकामनाएं...।"

कात्यायनी दीदी की आवाज़ सुनकर कांति खुश हुई और समय-समय पर याद रखने के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त किया। कात्यायनी उसके पति के दूर के रिश्ते में बहन लगती थी और इस हिसाब से वह उसकी ननद थी। उम्र में कात्यायनी काफ़ी बड़ी थी, इस कारण ससम्मान कांति उन्हें दीदी कहती थी। यद्यपि परिवार तो मायके-ससुराल का लगाकर कांति का भी बड़ा था मगर कात्यायनी दीदी की बात ही अलग थी। हर मुश्किल में वह कांति के साथ खड़ी होती थी। यद्यपि कुछ सालों से दोनों का घर दूर हो गया था मगर दिल के रिश्ते पहले की तरह ही थे। कांति को वह सोचकर पुनः अच्छा लगने लगा कि उसके जीवन का जब भी कोई सुखद पल आता है या वह बेचैन होती है तो जैसे कात्यायनी दीदी को आभास हो जाता है। उनसे बात करते-करते यह सब सोच ही रही थी कि कात्यायनी बोली, "एक खुशखबरी मेरे घर में भी है, मेरे बेटे की शादी तय हो गई लड़की वनस्थली से पढ़ाई करके जॉब में है उसके पिता नहीं हैं मगर मां रिटायर्ड ऑफिसर है शादी दिल्ली में ही होगी?"

कांति खुश होते हुए बोली, "यह तो बड़ी खुशी की बात है बहुत-बहुत बधाई आपको। मगर यह तो बताइए कि वो लोग दे क्या रहे हैं?"

"अच्छा देन-लेन?" चूंकि लड़की के पिता नहीं है तो मां ने कहा— "मेरे दो बच्चे हैं या तो 25-50 लाख दहेज ले लीजिए या मेरी सम्पत्ति का तमाम हिस्सा दो भाग में बांट दूंगी, आधा बेटे को... आधा बेटी को...।

कात्यायनी आगे बोली, "जब स्वेच्छा से ही उसकी मां उसे सम्पत्ति में हिस्सा दे रही है तो दहेज का नाम लेकर मैं स्वयं को छोटा क्यों बनाती? कहा कि वे लोग जैसा ठीक समझें।"

कांति ने जवाब दिया कि यह बढ़िया किया आपने... ऐसे ही कुछ सामान्य घर-परिवार की बातों के साथ फ़ोन कट गया। सिर्फ़ फ़ोन कट नहीं हुआ था बल्कि इसी के साथ कांति के मन की उलझन के बादल भी छंटने लगे थे। वह मन ही मन बेटी द्वारा पूछे गए सम्पत्ति के सवाल का जवाब देने हेतु खुद को तैयार करने लगी थी।

वह समझ गई थी कि जब मां-बाप बेटियों को सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देते, तभी उन्हें दहेज देना पड़ता है मगर वह दहेज बेटी के काम तो आता नहीं, अगर आता तो उसे समय-कुसमय बेघर होने का ताना क्यों सुनना पड़ता? सोच यहीं थम नहीं रही थी। उसके अतीत के पन्ने पलटने लगे थे। उसे याद हो आई, जब उसके मायके में घर और सम्पत्ति का बंटवारा हो रहा था तो कांति ने खुद भी अपने मां-बाप से ज़मीन का एक टुकड़ा मांगा था ताकि उस पर वह छोटा सा घर बना सकें और जब मन हो, वहां आ सकें... उसका अपना घर होता तो उसे मायके आने के लिए भाईयों की इजाज़त नहीं मांगनी पड़ती, मगर नहीं, उसकी बात नहीं सुनी गई और उसे सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं दिया गया। उसके पास अपना कहने के लिए कुछ नहीं था जब-तब ससुराल वालों के साथ किसी मुद्दे पर बहस होने पर उसे बेघर का ताना मिलता रहा है। कहा गया कि हमारी बदौलत यहां रह रही हो, यह हमारा घर है, हमारे हिसाब से चलो, तेरे मायके का दिया घर नहीं, जो अपना राज चलाओगी।"

कांति अतीत से वर्तमान में आई और बोली नहीं अब और नहीं। उसने मन ही मन समानता की राह पर चलने का निर्णय लिया और तय किया कि जो मैंने सहा है, मेरी बेटी नहीं सहेगी। अच्छा ही है कि उसे मैं सम्पत्ति में हिस्सा दूं न कि दहेज। इससे मेरी बेटी मानसिक व आर्थिक रूप से सफल बनेगी।

कांति के मन की बेचैनी दूर हो चुकी थी और वह इंतज़ार कर रही थी कि कब उसकी बेटी उठे और उसे बराबरी का सम्मान यानि घर/सम्पत्ति में हिस्सेदारी देने की खबर दे...।

लेखिकाः **कुलीना कुमारी**
महिला अधिकार अभियान, नई दिल्ली

संघर्ष जिन्होंने इतिहास रचा

बीना अग्रवाल

बोधगया आंदोलन

1978 में बिहार के गया जिले में आरम्भ हुआ बोधगया आंदोलन भूमिहीन मजदूरों तथा बटाई पर खेती करने वाले काश्तकारों का उस भूमि पर अधिकार पाने का संघर्ष था, जिस पर ये दशकों से खेती करते आ रहे थे। यह भूमि क़रीब 9575 एकड़ थी और लगभग 138 गांवों में फैली हुई थी। इस पर एक मठ का कब्ज़ा था जो काफ़ी हद तक भूमि उच्चतम सीमा क़ानून के ख़िलाफ़ था। मठ के अधिकारी, किसानों का शोषण करते थे तथा औरतों पर यौन अत्याचार करते थे। यह संघर्ष जय प्रकाश नारायण द्वारा 1975 में स्थापित तथा ग़रीबों की स्थिति सुधारने के लिए वचनबद्ध एक गांधीवादी समाजवादी युवा संस्था छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के नेतृत्व में शुरू हुआ।

वाहिनी की सदस्यता सिर्फ़ 30 वर्ष से कम लोगों को मिल सकती थी। संस्था के हर स्तर पर औरतें शामिल थीं। यह आंदोलन वर्षों तक चला। इसका मुख्य नारा था "जो ज़मीन बोए-जोते, वही ज़मीन का मालिक"। इस आंदोलन में औरतों ने एक अहम भूमिका निभाई। मिसाल के लिए 1980 से कार्यकर्ताओं ने तय किया कि मठ से आज़ाद होकर ज़मीन पर कब्ज़ा करेंगे और उसे जोतेंगे। क़रीब 3000 एकड़ ज़मीन पर कब्ज़ा करके उसे जोता गया। पुलिस के हमलों के बावजूद बुवाई पूरी कर दी गई लेकिन फ़सल कटने के समय फिर हमले होने लगे। चूंकि आमतौर पर फ़सल की कटाई औरतें करती हैं इसलिए हमलों की मार उन्हें झेलनी पड़ी। ज्यों-ज्यों अत्याचार बढ़े, औरतों की भागीदारी भी बढ़ती गई, औरतों ने आंदोलन की अहिंसक विशेष प्रदर्शनियों में हिस्सा लिया हालांकि उन्हें मठ के किराए के गुंडों से पिटवाने और बलात्कार तक करवा देने की धमकियां दी गई। समय के साथ औरतों की संख्या बढ़ती गई, उन्होंने मर्दों के बराबर संख्या में हिस्सा लेकर अपने बच्चों के साथ गिरफ्तारियां दीं।

इसके अलावा संघर्ष के दौरान औरतों ने अपने सरोकारों पर चर्चा करने के लिए शिविर आयोजित किए। उनमें उन्होंने औरतों के शोषण, उन पर घरेलू काम की पूरी ज़िम्मेदारी, लड़कियों के साथ भेदभाव, पुरुषों द्वारा मौखिक व शारीरिक हिंसा तथा (सबसे अहम) औरतों के स्वतंत्र भूमि अधिकारों की ज़रूरत जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया। पत्नियों के साथ मारपीट के ख़िलाफ़ तथा औरतों के नाम पर ज़मीन होने की मांग सहित कई प्रस्ताव पास किए।

आखिरकार 1981 में सरकार से मठ के कब्ज़े को 1000 एकड़ भूमि को आंदोलनकारियों के बीच बांटने के लिए चुना। वाहिनी से भूमिहीन मजदूरी, अपंगों, विधवाओं तथा छोटे किसानों को प्राथमिकता देते हुए एक सूची तैयार की। इस सूची में विधवाओं के अलावा कोई औरतें नहीं थी। इस बात का उन्होंने विरोध किया। हमने अपनी कोख में और गोद में बच्चे लेकर इस संघर्ष की अगुवाई की। हम जेल गईं, हमने लाठियां खाईं और घर का काम भी किया, लेकिन जब ज़मीन बांटने की बारी आई तो हमें पीछे धकेल दिया।

औरतों को स्वतंत्र भूमि अधिकार क्यों मिलने चाहिए, इस विषय पर चली लम्बी बहस के बाद 1982 में तय किया गया कि भविष्य में होने वाले सभी बंटवारों में औरतों को उनके नाम पर ज़मीन दी जाएगी।

लगभग तीन साल बाद आख़िरकार ज़मीन औरतों के नाम आबंटित की गई। धीरे-धीरे मठ के ग़ैर क़ानूनी कब्जे वाली पूरी ज़मीन बांट दी गई। औरतों को अनेक रूपों में ज़मीन मिली, उनके अपने नाम पर, पत्नियों के साथ साझे पट्टे पर, विधवा, बेसहारा और विकलांग व्यक्ति के रूप में तथा (पहली बार) कुछ मामलों में अविवाहित वयस्क

बेटी के रूप में भी ज़मीन प्राप्त हुई। हर व्यक्ति को क़रीब एक एकड़ ज़मीन मिली।

यह सब कैसे मुमकिन हुआ? शुरूआत में औरतों को तीन स्तरों पर विरोध का सामना करना पड़ा। नारीवादी सोच वाली वाहिनी को कुछ कार्यकर्ताओं का सहयोग मिला तथा औरतों ने हर विरोध का सामना बातचीत के ज़रिए, समझकर किया।

उदाहरण के लिए, भूमि वालों की पहली सूची में शामिल न किए जाने पर जब औरतों ने विरोध किया तो मर्दों ने कहा कि "क्या फ़र्क़ पड़ता है ज़मीन किसके नाम पर पंजीकृत होती है?" इस पर औरतों ने जवाब दिया कि अगर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता तो औरतों के नाम पर क्यों नहीं कर देते? अब मर्दों ने पूछा "तुम्हारे लिए जुताई कौन करेगा?" तो उन्होंने पूछा "तुम्हारी फ़सलों की कटाई कौन करेगा?" हम अपने खेतों को हल की जगह कुदाली से खोदने के लिए तैयार हैं, लेकिन हमें ज़मीन अपने नाम पर चाहिए।

बोधगया संघर्ष औरतों के नज़रिए से सिर्फ़ इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि यह दक्षिण एशिया का पहला ऐसा संघर्ष था जिसमें औरतों के भूमि हितों की तरफ स्पष्ट रूप से स्थान दिया गया था। इस आंदोलन का महत्व उस प्रक्रिया के कारण भी है जिसके ज़रिए यह सब संभव हो सका। सोचने की बात यह है कि मुख्य रूप से अशिक्षित किसान समुदाय ने अनेक मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की, जैसे कि आर्थिक संसाधनों से औरतों के स्वतंत्र अधिकार, घरेलू हिंसा, स्त्री शिक्षा, शादी के बाद रहने का स्थान आदि। नतीजा यह हुआ कि निर्णय प्रक्रिया से औरतों की भागीदारी बढ़ी। औरतों के साथ मारपीट और गाली-गलौच को शर्मनाक समझा जाने लगा। मर्द खाने-पीने व बच्चे संभालने जैसी घरेलू ज़िम्मेदारियां उठाने लगे।

तेभागा आंदोलन

तेभागा आंदोलन बंगाल में 1943 की भीषण आवाज़ के बाद 1946-47 के अविभाजित बंगाल में उभरा। उस क्षेत्र में बटाईदार किसानों के पास कोई दखल अधिकार नहीं थे। उन्हें हर समय ज़मीन से बेदखल कर दिए जाने का डर लगा रहता था। भूमिपति, उत्पादन की कीमत में तो कोई हाथ नहीं बंटाते थे, लेकिन आधी फ़सल ले लेते थे। ग़ैरक़ानूनी टैक्स वसूलते थे, और औरतों पर यौन अत्याचार करते थे। बंगाल प्रॉविन्वयन किसान सभा (बी.सी.के.एस.) ने कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया के नेतृत्व में आंदोलन की शुरूआत की। इसमें भूमि के किराए में कमी के साथ अन्य प्रकार के शोषण समाप्त करने की मांग की गई। वूमेंस सेल्फ डिफेंस लीग ने औरतों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आंदोलन से पहले यौन शोषण जाति तथा आर्थिक दमन के साथ क़ाफ़ी नज़दीक से जुड़ा था। बटाईदार के पेड़ के आमों की तरह उसके बगीचे के केलों की तरह, उसके छप्पर पर लगी लौकी की तरह, उसके बाग के बैंगन की तरह, उसकी बेटियां बहुएं भी (भूमिपति के) घर भेज दी जाती थी।

आंदोलन में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों वर्गों की औरतों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। जो औरतें दिन में गांवों में रहती थीं, वे किसी तरह की आवाज़ के ज़रिए लोगों को पुलिस के आने की सूचना दे देती थीं, जैसे कि शंख बजाकर। वे आंदोलनकारियों को खाना और रहने की जगह भी देती थीं। जो औरतें काम के सिलसिले में अक़्सर बाज़ार जाती थीं, वे संचार सेवाओं के लिए ज़िम्मेदार थीं तथा कार्यकर्ताओं के संदेश इधर से उधर ले जाती थीं। जो गांव की सुरक्षा करती थीं। ग़रीब किसान औरतें, बैठकों और प्रदर्शनियों में भाग लेती थीं। भूमिपतियों के पास जाने वाले प्रतिनिधि मंडल का हिस्सा बनती थीं। हालांकि उनका कोई ख़ास ओहदा नहीं था फिर भी कभी-कभी वे तेभागा समिति के सदस्यों से भी मिलती थीं।

औरतों की आक्रामकता की याद मुख्यतः ग़िरफ्तारी का विरोध करने के संदर्भ में की जाती है, जब उन्होंने लोगों को गिरफ्तारी से बचाने के लिए बहुत हिम्मत, बहादुरी और पहल का परिचय दिया था।

औरतों द्वारा विरोध के हथियार उनकी रोज़मर्रा के इस्तेमाल की घरेलू चीजें थीं जिनसे उन्होंने प्रायः सफलतापूर्वक पुलिस का सामना किया।

"जैसे ही पुलिस गांव में घुसती थी शंख की आवाज गूंजने लगती थी जो गांव के एक कोने से दूसरे कोने तक सुनी जा सकती थी। चेतावनी देने का यह अनोखा ढंग किसान औरतों ने खोज निकाला था। शंख की आवाज सुनते ही, सारी औरतें झाड़ू, सोटा, लाठी पकड़ लेतीं, और

गांव के रास्ते के बीच दीवार बनकर खड़ी हो जाती थीं कि पुलिस वाले अंदर न जा सके।"

पुलिस बल को निष्क्रिय बनाने, गिरफ्तारी का विरोध करने तथा लोगों को बचाने में औरतों की पहल, वीरता के स्तर तक पहुंच गई थी। अनेक मौकों पर भूमिपतियों द्वारा पुलिस की मदद से किसानों के खेतों से धान की कटी फ़सल चुराने की कोशिशों को भी औरतों ने ही नाकाम किया। कैंदेमारी गांव का उदाहरण लें—

"उन्होंने शायद कल्पना भी नहीं की थी कि आक्रामक (किसान) औरतों का एक समूह दाव, दराती और झाड़ू लेकर उनकी तरफ़ बढ़ने लगेगा। औरतों ने साड़ी के पल्लू में मुट्ठी भर मिर्च मिली मिट्टी बांध रखी थी, जैसे ही वे पुलिस वालों के करीब पहुंची उन्होंने मिट्टी उनकी आंखों में झोंक दी, पुलिस वाले जान बचाकर भागे।"

कई बार ये मुकाबले हिंसक हो जाते थे और अनेक साहसी औरतें इनमें घायल हुईं या पुलिस की गोली-बारी से मारी गईं।

अभियान के दौरान अनेक जेंडर सरोकारों पर आवाज़ उठाई गई, जैसे कि पतियों द्वारा मारपीट।

औरतों की समान भागीदारी के बावजूद अभियान के भीतर और बाहर असमान जेंडर संबंध जारी रहे, औरतों को जो कुछ फ़ायदे मिले वे भी अस्थाई क़िस्म के थे। घरेलू हिंसा के प्रति उनके विरोध के चलते, उसके लिए ज़िम्मेदार कुछ पुरुष कार्यकर्ताओं का बहिष्कार भी किया गया। लेकिन इस मुद्दे को अभियान के मुख्य लक्ष्य, आर्थिक-सामाजिक बदलाव लाने के व्यापक राजनैतिक संघर्ष के अटूट हिस्से के रूप में नहीं देखा गया। ख़ासतौर पर औरतों के भूमि अधिकारों के मुद्दे पर कोई चर्चा नहीं हुई और निर्णय प्रक्रिया में भी औरतों की भागीदारी कम ही थी।

हालांकि अभियान के सबसे प्रचंड दौर में औरतें अपनी घरेलू भूमिकाओं से बाहर निकल आईं थीं, लेकिन जब अभियान ख़त्म हो गया तो उन्हें परिवारों के भीतर, उन्हीं पुराने जेंडर संबंधों के बीच, घरेलू काम पर लौटने के लिए मजबूर होना पड़ा। कई दशक बाद कहीं जाकर बोधगया आंदोलन के तहत परिवार के भीतर दमन तथा औरतों के भूमि अधिकारों के मुद्दे दक्षिण एशिया के किसी किसान आंदोलन में महत्वपूर्ण ढंग से उभर सके।

महिलाओं द्वारा सामूहिक खेती

'डेकन डेवलपमेंट सोसायटी' (डी.डी.एस.) आन्ध्रप्रदेश के अकाल पीड़ित इलाके, मेदक जिले के 75 गांवों में ग़रीब महिला समूहों के साथ काम करने वाली एक ग़ैर सरकारी संस्था है। डी.डी.एस. ने अनेक सरकारी योजनाओं का इस्तेमाल करते हुए भूमिहीन परिवारों की औरतों को लीज़ पर भूमि पाने और खरीदने में मदद की।

आन्ध्रप्रदेश में अनुसूचित जाति विकास निगम की एक योजना, कृषि भूमि खरीदने के लिए अनुसूचित जाति की भूमिहीन औरतों को कम ब्याज पर कर्ज़ देती है। डी.डी.एस. की प्रेरणा से औरतें अपने समूह बनाकर कर्ज़ के लिए आवेदन करती हैं और उस ज़मीन को आपस में बांट लेती हैं। प्रत्येक औरत को करीब एक एकड़ ज़मीन पंजीकृत होती है। लेकिन काश्तकारी के लिए वे एक होकर सामूहिक खेती करती हैं। साथ-साथ काम करने की प्रक्रिया में उन्होंने बहुत कुछ सीखा है, जैसे जमीन का सर्वेक्षण करना, उसे नापना, किराए पर ट्रैक्टर लेना, दूर के शहरों तक सफ़र करके अधिकारियों से मिलना, ज़रूरी सामान खरीदना, फ़सल बेचना। इतना ही नहीं महिला समितियां लीज़ प्रस्तावों की जांच करती हैं, भूमि की गुणवत्ता परखती हैं। प्रत्येक औरत द्वारा किए गए काम का हिसाब रखा जाता है। यह ध्यान रखा जाता है कि बेचना और उत्पाद का बंटवारा बराबर हो। जो औरतें श्रम के लिए नहीं आतीं उन पर जुर्माना किया जाता। इसका फ़ैसला औरतें अपनी साप्ताहिक बैठक में करती हैं। लगातार गलती करने पर महिला को समूह से बाहर भी कर दिया जा सकता है।

1989 में शुरू हुआ यह कार्यक्रम अब 52 गांवों में 623 एकड़ भूमि पर लागू है (2002 में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार)। 1995 के एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक भागीदार औरत को इतना अनाज और दालें मिलीं कि एक महीने तक उसके पूरे परिवार का पेट भर सका। साथ ही फ़सल कटाई की मजदूरी भी मिली। उस दौरान केरल में भी कुछ महिला समूह सब्ज़ियां उगाने के लिए ज़मीन लीज़ पर लेते। बांग्लादेश में ब्रेक से जुड़े महिला समूह लीज़ पर ली गई ज़मीन पर फ़सलें उगाते हैं।

सामूहिक खेती के प्रभाव स्वरूप हमारे पति शराब पीने और मारने-पीटने के आदी थे। अब भैंसें हमारी, ज़मीन

हमारी और वे काम भी करते हैं। कोई भी हम औरतों का फ़ायदा नहीं उठा सकता (रत्नम्मा, एल्गोले गांव, हॉल स्थित 1999)।

अब हमें खाना और कपड़ा मिल जाता है। पहले हमारे पास कुछ नहीं था, हर चीज़ के लिए हमें हां कहनी पड़ती थी। आज हमारा भी समाज में दर्जा है क्योंकि हमारे पास ज़मीन है (चिल्कम्मा, कृष्णपुर गांव, हॉल स्थित 1999)।

समुदाय में पुरुषों व महिलाओं में सशक्तिकरण का पहला अहसास तब आया जब औरतों ने ज़मीन पर लीज़ के आधार पर काम करना शुरू किया। गांव में पुरुष ख़ासतौर से शक्ति सम्पन्न पुरुष जो सोचते थे कि औरतें कृषि श्रमिकों के रूप में केवल निरीक्षण का काम कर सकती हैं, ज़मीन की लीज़ के इस नज़रिए ने उनको पूरी तरह गलत साबित कर दिया (निदेशक डी.डी.एस. हॉल स्थित 1999)।

पुस्तक साभारः "क्या हम किसान नहीं"

लेखिकाः **बीना अग्रवाल** दिल्ली विश्वविद्यालय में आर्थिक विकास संस्थान की निदेशक व प्रोफेसर हैं। वे पुरस्कार प्राप्त पुस्तक 'अ फील्ड ऑफ हर ओन': जेंडर और भूमि अधिकार की लेखिका हैं। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर महिलाओं के सम्पत्ति और भूमि अधिकार के मुद्दों पर उनके शिक्षण, लेखन ने नीति निर्माण के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

कविता

राखी बांधकर लौटती बहनें

सुधा अरोड़ा

पिता नहीं लिख पाए अपनी वसीयत
नहीं देख पाए
कि दामाद भी उसी साल हादसे का शिकार हो गया
और बेटी अकेली रह गई
इसी भाई ने की दौड़ धूप
बैठाए वकील
दिलाई एक छत
जहां काट सके अपने बचे खुचे दिन
पर छत के नीचे रहने वाले का पेट भी होता है
यह न भाई को याद रहा, न उसे खुद

मां ने कहा—
इस कोठी में एक हिस्सा तेरा भी है
तू उस हिस्से में रह लेना
भाई ने आंखें तरेरी
भाभी ने मुंह सिकोड़ लिया!

वकील ने इधर नोटिस के कागज़ तैयार किए
और खबर उधर तैरती जा पहुंची
बस, उस एक साल भाई ने
न अपनी बेटी की शादी पर बुलाया
न राखी पर आने की इजाज़त दी
उसने न मां की सुनी
न वकील की!
कहा— नहीं चाहिए मुझे खैरात
मैं जहां हूं, वहीं भली!
अपने छोटी पानी के जुगाड़ में
बच्चों के स्कूल में अपने पैर जमा लिए
नोटिस के कागज़ के चार टुकड़े
पानी में बहा दिए।
तब से वहीं है
अपने शहर सहारनपुर।

अब तो वह अपना एक कमरा भी
कोठी सा लगता है
बच्चे खिलखिलाते आते-जाते हैं
कॉपी किताबें छोड़ जाते हैं
जिन्हें सहेजने में दिन निकल जाता है।

सुधा अरोड़ा

घर दोनों का

मनीषा गुप्ते

हमारे परिवारों में सम्पत्ति पर हमेशा से पुरुषों का एकाधिकार रहा है। इसके पीछे कारण है पितृसत्तात्मक सोच। जो यह कहती है कि यदि महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार मिल गया तो वे पुरुषों के नियंत्रण से बाहर हो जाएगीं।

दशकों से चली आ रही इस जेंडर आधार सामाजिक असमानता ने लम्बे संघर्ष के बाद बदलाव की पहली सीढ़ी पर क़दम रखा। हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन क़ानून 2005 में पिता की सम्पत्ति में महिला अधिकार को सुनिश्चित किया गया। परन्तु इसके पूर्व ही 2003 में ही महाराष्ट्र सरकार ने महिलाओं के हित में एक बेहद प्रगतिशील सोच वाला आदेश जारी किया। जिसमें पारिवारिक सम्पत्ति पति-पत्नी के संयुक्त नामों पर पंजीकृत करने का आदेश था। इस आदेश के क्रियान्वयन में महाराष्ट्र की एक ग़ैर सरकारी संस्था 'मासूम' (महिला सर्वांगीण उत्कर्ष मण्डल) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

'मासूम' की संस्थापक सदस्य सुश्री मनीषा गुप्ते के अनुसार यह आसान काम नहीं था। सरकार को इस काम को लागू करने में महीनों लग जाते। स्थिति यह थी कि सरकारी कर्मचारियों को ब्लॉक स्तर के कार्यालयों के बाहर बैठने पर धमकी मिलने लगी, इसके बाद सरकार ने यह काम 'मासूम' को सौंपा। हमने रणनीतिक तौर पर काम शुरू किया। छुट्टियों के दौरान कॉलेज के छात्रों को इकट्ठा किया और सहयोग मांगा। उन्हें ब्लॉक के लगभग 130 गांव में एक दिन का प्रशिक्षण दिया गया।

पोस्टर-पर्चे व बातचीत के द्वारा घर-घर जाकर इस आदेश का प्रचार किया गया। ब्लॉक विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) द्वारा ग्राम सेवकों के नाम एक नोटिस जारी किया गया। जिसमें ग्राम सेवकों को इस काम को पूरा करने में "मासूम" का सहयोग करने का आदेश था।

- एन.डी.टीवी. द्वारा इस मुद्दे पर अभियान चलाया गया जिससे राज्य के महिला समूह "संयुक्त स्वामित्व" के इस सरकारी आदेश से अवगत हुए।

- सरकारी कर्मचारियों को यह कहकर प्रोत्साहित किया कि वे भारत का इतिहास रच रहे हैं। इस काम में बहुत सारी सामाजिक और तकनीकी चुनौतियां भी थी। जैसे-
- कुछ घरों में पारिवारिक संयुक्त स्वामित्व था या बेटों के बीच विवाद था।
- कुछ घरों में पहले से ही एकल पुरुष या महिला स्वामित्व था।
- कुछ पुरुष दूसरी पत्नी का नाम स्वामिनी के रूप में पंजीकृत करने को तैयार नहीं थे। ऐसे में उन्हें तर्क दिए

गए कि यदि पति ने दो शादियां की हैं तो इसमें पत्नी का क्या दोष है?

मनीषा अपने प्रस्तुतिकरण में बताती है कि इस दौरान कुछ नकारात्मक किन्तु रोचक प्रतिक्रियाएं भी आईं। अधिकांश पुरुषों ने कहा, हम (संस्था के लोग) पति-पत्नी के बीच झगड़े को बढ़ावा दे रहे हैं। कुछ ने कहा अब औरतें हमें घर से बाहर फेंक देंगी और बाहरी लोग आसानी से हमारे घरों में सेंधमारी करेंगे या कब्ज़ा करेंगे। 'मासूम' ने संयुक्त स्वामित्व के इस आदेश को एक अभियान की तरह चलाया और जल्द ही यह पूरे राज्य में फैल गया। इसके माध्यम से महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के अधिकार पर भी ग्राम सभाओं में मुद्दे उठाए गए। महिलाओं के लिए ग्राम निधि से 10 प्रतिशत योगदान की भी बात की गई। महिलाओं द्वारा नाम मात्र की जाने वाली बचत के आधार पर महिलाओं की 'आर्थिक सहभागिता' के मुद्दे को गंभीरता से लिया गया। परिणामस्वरूप महिलायें गांव के प्रतिनिधियों से नाम पक्षों पर बात करती और "संयुक्त स्वामित्व" के नामों को लोगों तक पहुंचाने के लिए सार्वजनिक पता प्रणाली का उपयोग करने लगी। मासूम द्वारा दिया गया नारा 'घर दोनों का' (मूल रूप - घर दोघांचे) इस अभियान का मूल वाक्यांश बन गया। इस दौरान अहमदनगर जिले के चार गांवों में सौ प्रतिशत घर संयुक्त स्वामित्व पत्र में पंजीकृत हो गए। पुरन्दर ब्लॉक के लगभग 70-90 प्रतिशत घरों को संयुक्त स्वामित्व में परिवर्तित किया गया। इस सफलता के लिए संघर्षरत रहे ब्लॉक विकास अधिकारियों (बी.डी.ओ.), ग्राम सेवकों और सरपंच जिन्होंने अपने क्षेत्रों में 90 प्रतिशत संयुक्त स्वामित्व पंजीकरण कराया था, उन्हें पुणे शहर में स्मृति चिन्ह और प्रमाण पत्र दिया गया तथा अखबार और टीवी के माध्यम से सार्वजनिक रूप से सम्मानित किया गया।

अभियान के दौरान मिली कुछ सकारात्मक प्रतिक्रियाएं पुरुषों द्वारा—

- मुझे भरोसा नहीं है कि मेरे मरने के बाद मेरे बेटे मेरी पत्नी का ख्याल रखेंगे या नहीं इसलिए मुझे खुशी है कि अब वह हमारे घर की मालकिन है।
- ज़मीन का भी संयुक्त रूप से स्वामित्व किया जाना चाहिए। अब मुझे प्रेरित किया जा रहा है कि पिता के नाम को अपनी पत्नी के नाम से जोड़ना चाहिए।
- यह कैसे संभव है कि एक महिला एक आदमी को संयुक्त रूप से स्वामित्व वाले घर से बाहर फेंक देगी।
- जब औरतों को आदमी घर से बाहर निकाल देते थे तो महिला कहां जाती थी।

महिलाओं द्वारा मिली सकारात्मक प्रतिक्रिया

- हमें ज़मीन पर ख़िताब चाहिए।
- इस क़दम ने मुझे साहस दिया है। मुझे लगता है मेरा पति मुझे यह कहने से नहीं रोक सकता कि 'यह घर मेरा है, अब मैं कह सकती हूं 'यह घर मेरा भी है'।

यह अभियान 'मासूम' की अपेक्षाओं से कहीं ज़्यादा सफल रहा। लेकिन पितृसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी रखना ज़रूरी है। हमें यह याद रखना होगा कि समान सम्पत्ति के लिए अधिकार को जन्म से शुरू करना होगा। वास्तव में जन्म से ही घर में एक महिला को उसके सम्पत्ति हक़ से वंचित रखा जाता है। इस कारण शादी करने के सिवाय उसके पास कोई विकल्प नहीं और उसके बाद शादी अच्छी हो या बुरी उसे हमेशा के लिए उस रिश्ते में रहना पड़ता है। निजी सम्पत्ति का अधिकार सिर्फ़ पुरुषों के लिए नहीं सभी के लिए बराबर होना चाहिए। पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देने के लिए महिलाओं के सम्पत्ति अधिकार अभियान, निरन्तर होने चाहिए।

मनीषा गुप्ते, संस्थापक मासूम, ग़ैर सरकारी संस्था, मुम्बई द्वारा मई 2017 में महिला सम्पत्ति अधिकार संगोष्ठी में दिए गए प्रस्तुतिकरण के आधार पर लेखन।

लिप्यंतरणः **ममता पाठक**

1500 बीसी में तलाक़ की अनुमति नहीं थी और सम्पत्ति विरासत अधिकार केवल पुरुषों के पास था।

कृषि भूमि पर ग्रामीण महिलाओं के विरासत अधिकार सुनिश्चित करना

नेबरून सेन गुप्ता

गुजरात के स्वभूमि केन्द्र का मामला

भूमि एक प्राकृतिक पूंजी है जो व्यक्ति और परिवार की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करती है। यह हमेशा से ही संघर्ष का विषय रहा है जैसे किसको क्या और कितना हिस्सा मिलेगा? यह संघर्ष और बढ़ जाता है जहां मामला विरासत (भूमि) में महिला के हिस्से का हो। सामान्यतः वारिस के रूप में बेटों को देखा जाता है और बेटियों को अपने अधिकार त्यागने की सलाह दी जाती है या उन पर दबाव बनाया जाता है। ज़मीन पर महिलाओं के अधिकारों पर काम करने वाली एक ग़ैर सरकारी संस्था डब्ल्यू.जी.डब्ल्यू.एल.ओ. (WGWLO) *(वर्किंग ग्रुप ऑफ वूमन एण्ड लैण्ड ओनरशिप)* के एक समूह ने गुजरात सरकार के साथ मिलकर इस मुद्दे पर काम किया, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि क़ानून के तहत् महिलाओं, विशेषकर विधवाओं और बेटियों को अपने भूमि दावों के मामलों में भूमि मिली है या नहीं। डब्ल्यू.जी.डब्ल्यू.एल.ओ. ने गुजरात में काम करने वाले कई प्रतिष्ठित संगठनों और महिला संघों के साथ मिलकर इस मुद्दे को उठाया और अपने हक़ पर दावा करने में महिलाओं की मदद की। राज्य सरकार ने 'वर्सी जुम्वीश' (Varsai Jumbees) नाम की एक पहल की जिसमें निर्धारित समय सीमा के अन्दर विरासत से जुड़े सभी लंबित मामलों को पूरा करने का आदेश था। सरकारी विभागों, डब्ल्यू.जी.डब्लयू. एल.ओ. और अन्य संघों ने एक साथ मिलकर काम किया। यह समय महिलाओं को भूमि अभिलेखों से जोड़ने और भूमि स्वामित्व दिलाने का था। साथ ही महिलाओं को किसानों के रूप में व अन्य संसाधनों से जोड़ने की भी ज़रूरत थी, जिस पर सबने मिलकर काम किया।

स्वभूमि केन्द्र द्वारा किए गए प्रयास

संथरामपुर— मंजुलाबेन ने कहा— मैं जानती हूं इस ज़मीन की उत्पादन क्षमता अच्छी नहीं लेकिन ऐसा क्यों है कि ज़मीन बिना संघर्ष के हमें नहीं मिलती। मंजुलाबेन एक विधवा है जिसके छः बच्चे है। पति का देहान्त चार साल पहले हो गया। उसकी दो बेटियां अहमदाबाद में दैनिक मज़दूरों के रूप में काम कर रही हैं और परिवार के आर्थिक संकट को कम करने में मदद करती हैं। मंजुलाबेन ने बताया, "मैं घर और खेतों का प्रबन्धन बड़ी कठिनाइयों से करती हूं। सूखे के कारण इस साल ज़मीन के टुकड़े से भी कुछ नहीं मिला, वह ज़मीन जो मुझे इतने संघर्षों के बाद मिली थी"।

मंजुलाबेन को अपनी ज़मीन पाने के लिए लड़ना पड़ा क्योंकि पति की मृत्यु के बाद सामाजिक परम्पराओं ने उसे अपने घर से बांधे रखा। ज़मीन केवल पति के नाम पर थी। सरकार के 'वर्सी जुम्वीश' कार्यक्रम के दौरान 'सारथी' के क़ानूनी कार्यकर्ता जब मंजुलाबेन से मिले तो यह संघर्ष शुरू हुआ। बहुत सारी औपचारिकताएं पूरी करनी थीं। मंजुलाबेन के पास कोई प्रमाणपत्र नहीं था, जिससे भूमि पर उनके अधिकार को प्रमाणित किया जा सके। न पति की मृत्यु का प्रमाणपत्र और न ही उनके परिवार के अन्य सदस्य (देवर) का लिखा हुआ शपथ पत्र था। इनको प्राप्त करने के लिए कार्यकर्ताओं को कड़ी मेहनत करनी पड़ी। लगभग तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद मंजुलाबेन और उनकी बेटियों का नाम भूमि अभिलेखन (भूमि विरासत) के कागज़ों पर लिखा गया।

संथरामपुर में एक दूसरा मुद्दा था सिंचाई स्त्रोतों तक किसानों की पहुंच बिल्कुल नहीं थी, न ही उनके पास कृषि

आवश्यक उपकरण थे। ज़्यादातर किसान इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य लोगों की ज़मीनों पर इस उम्मीद पर काम करते थे ताकि ज़रूरत पड़ने पर उन्हें सहयोग मिल सके। बारिश न होने और फ़सल खराब हो जाने पर मुश्किलें और बढ़ जाती। इन सभी परेशानियों को देखते हुए 2014 में 'स्वभूमि केन्द्र' की स्थापना करने वाली संस्था 'सारथी' ने घर-घर सम्पर्क किया। प्रत्येक किसान को सरकारी योजनाओं का लाभ मिले, इसके लिए 'आई किसान पोर्टल' में प्रत्येक किसान का पंजीकरण कराया गया।

स्वभूमि केन्द्र ने इस दौरान 98 विधवा महिलाओं के नाम भूमि अभिलेखों में शामिल करने में सहायता ही नहीं की बल्कि सरकारी योजनाओं तक उनकी पहुंच बनाने में भी मदद की। जिससे महिलाओं को अपनी आजीविका चलाने, अपने संसाधनों को मज़बूत करने और भूमि का पर्याप्त उपयोग करने में मदद मिल सके। इसके अलावा 'सारथी' ने 170 परिवारों की बेटियों को परिवार की पैतृक सम्पत्ति अपने नाम दर्ज कराने में भी मदद की।

इस कार्यक्रम के माध्यम से यह धारणा गलत साबित हुई कि 'आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष अधिकार एक समान हैं,' क्योंकि इन परिवारों में विधवा औरतों को 'चुड़ैल' का नाम देकर घर और गांव से बाहर कर दिया जाता था। भूमि अभिलेखों में महिलाओं के नाम आने से संभव है कि समय के साथ-साथ इन अत्याचारों में भी कमी आए। 'सारथी' लगभग तीन दशकों से संथरामपुर में महिलाओं और आदिवासियों के आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण पर काम कर रही है। 2007-2008 में उन्होंने संथरामपुर में 'एकल महिला मंच' का निर्माण किया। उसी दौरान सरकार की मदद से एक सेंटर और शुरू हुआ जहां महिलाओं को क़ानूनी मदद मिलती थी। वहीं 2014 में 'स्वभूमि केन्द्र' के निर्माण की शुरूआत हुई और भूमि अधिकार के मुद्दों पर महिलाओं को जानकारी और क़ानूनी सहायता दी जाने लगी। 'सारथी' ने पांच गांवों में अभियान चलाया और महिलाओं से इस मुद्दे पर लम्बी वार्ताएं की। परिणामस्वरूप महिलाओं ने पैतृक भूमि पर अपने अधिकारों की मांग करना शुरू किया। यह सब 'सारथी' और उसकी साथी संस्थाओं के लिए आसान नहीं था। हर मौके पर उनसे सवाल किया गया। स्थानीय नेतृत्व के नेताओं को उनके इरादों पर शक हुआ और 'सारथी' को सलाह दी गई कि वे ऐसे मामलों में हस्तक्षेप न करें। कई अन्य बाधाएं भी थीं, जैसे पति-पत्नी का मृत्यु प्रमाण पत्र ज़्यादातर मामलों में उपलब्ध नहीं था। पारिवारिक सदस्य रिश्तेदार या गांव वाले शपथ पत्रों के लिए गवाह रूप में आगे आने को तैयार नहीं थे। सरकारी अधिकारियों का भी सहयोग नहीं था। कागजी कार्यवाई की लागत उठा पाना भी इन गरीबों के लिए आसान न था। विधवा महिलाओं के लिए आजीविका की सुरक्षा कोई बड़ा मुद्दा न था। परन्तु परिवार का बड़ा आकार भी एक बाधा थी। संस्था कार्यकर्ताओं को परिवार के सदस्यों से मुलाकात के लिए कई-कई बार गांवों और घरों के चक्कर लगाने पड़ते थे।

लेकिन इन तमाम बाधाओं को पार करते हुए दो सालों में 'सारथी' ने 98 विधवा महिलाओं, 170 अविवाहित महिलाओं, 14 बेटियों और 3 विवाहित बेटियों के भूमि अभिलेखों के रुके हुए मामलों को पूरा करवाया। इसके अलावा 86 परिवारों की 155 महिला सदस्यों के नाम भूमि मालिकों के रूप में दर्ज किए गए। दूसरी ओर सरकारी योजनाओं और सूचनाओं तक पहुंच बनाने के लिए इन महिलाओं के नाम 'आई किसान पोर्टल' में किसानों के रूप में दर्ज कराए गए।

नाम दर्ज होने के बाद दूसरी समस्या आवेदन की थी। आवेदन करना निजी साइबर कैफे पर निर्भर करता था जिसका शुल्क 50 से 100 रुपए तक होता था। आवेदन के बाद भी लाभ मिले इसकी गारंटी नहीं थी। इन सबके बावजूद अब प्रक्रियाएं क़ाफ़ी हद तक शुरू हो चुकी हैं और महिलाओं को उनके भूमि अधिकार और महिला किसान के रूप में अधिकार मिलने आरम्भ हो गए हैं जो कि पहले अस्वीकार कर दिए जाते थे।

लेखक: **नेबरून सेन गुप्ता** *विभिन्न ग़ैर सरकारी संस्थाओं (NGO) के साथ स्वतंत्र रूप से काम करते हैं। वे ग्रामीण क्षेत्र के आजीविका के मुद्दे और NGO व्यवस्था प्रणाली क्षेत्र में अध्ययन-अध्यापन और लेखन के कार्य में सक्रिय हैं।*

अनुवाद: **ममता पाठक**

संगठित हो एकल महिलाएं हासिल कर रही अपने अधिकार

एकल नारी शक्ति संगठन, राजस्थान

एकल महिलाओं को अपने ज़मीन सम्पत्ति के अधिकार हासिल करने में बहुत सी मुश्किलें सामने आती हैं। क़ानूनी रूप से ज़मीन व घर पर अधिकार होने के बावजूद भी एकल महिलाओं का अपनी सम्पत्ति पर नियंत्रण रखना आसान नहीं होता। ससुराल पक्ष या पीहर पक्ष के रिश्तेदारों के साथ-साथ वयस्क बेटों व समाज के बलशाली लोगों द्वारा भी चुनौती का सामना करना पड़ता है। एकल महिलाओं के चरित्र पर आरोप लगाने, उन्हें डायन कहने, घर में मारपीट, गाली-गलोच व अन्य उत्पीड़न के पीछे अक़्सर उनके हक़ की ज़मीन व सम्पत्ति पर कब्ज़ा करने की मंशा होती है। ऐसी स्थितियों से घिरी ग़रीब एकल महिलाओं के पास कोर्ट केस लड़ने के लिए आवश्यक संसाधन नहीं होते, और न ही इतना समय होता है कि वह फ़ैसला आने का इंतज़ार कर सकें। अपने अधिकार की सम्पत्ति पर कब्ज़े के साथ-साथ, वहां शांति से, बिना तनाव के रह पाना भी अपने आप में एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आता है। शायद इसीलिए "जिसकी लाठी, उसकी भैंस" जैसा मुहावरा आज के सभ्य व आधुनिक समाज में भी बार-बार सत्य होता नज़र आता है।

ऐसी स्थितियों में एकल नारी शक्ति संगठन के नेतृत्वकर्ता सही जानकारी, पटवारी से खाता निकलवाने, उसे पढ़ने, समय पड़ने पर पुलिस व मीडिया की मदद लेने के लिए प्रशिक्षित हैं। संगठन सदस्य भी मुश्किल में फंसी महिला का साथ देने के लिए तत्पर रहते हैं, जिससे कि न तो महिला स्वयं को और न समाज उसे अकेला और कमज़ोर समझे। यूं तो इन महिलाओं के संघर्ष और जीत के सैकड़ों क़िस्से हैं। हम आपके साथ एकल महिलाओं के सफ़ल संघर्ष की एक कहानी साझा कर रहे हैं।

कमला बाई को मिला ज़मीन पर हक़

कोई भी दुःख संगठन के आगे बढ़ा नहीं,
हारा वही है जो लड़ा नहीं...
दुःख तुम्हें क्या तोड़ेगा बहनों,
तुम ही दुःख को तोड़ दो,
बस अपनी आंखों के सपनों को,
संगठन के साथ जोड़ दो।

दिनांक 20 जनवरी 2016 को संगठन की ब्लॉक कमेटी सदस्य मीटिंग में कमला बाई व उसका पुत्र रवि एवं हंजा बाई आए। यहां पर कमला बाई ने संगठन कार्यकर्ता कंकू देवी को अपनी परेशानी के बारे में बताते हुए कहा कि हमारे पास एक बाड़ा है, उसका पट्टा हमारे पास है। इस बाड़े पर हमारा हक़ चला आ रहा है। इस बाड़े को लेकर मेरे पति स्व. किशन सिंह एवं उदय सिंह के बीच कुछ वर्ष पहले केस भी चला था जो मेरे पति की मृत्यु के बाद वर्ष 2013 में मेरे हक़ में फाइनल हो गया था। लेकिन मुझे इस बात का पता नहीं था। कुछ दिन पहले उदय सिंह ने मेरे बाड़े पर दीवार चुनवाना चालू किया और कहा बाड़ा उसका है। सारी बात सुनने के बाद कंकू बाई ने कमला बाई से कहा कि मुझे पहले कागज़ात दिखाओ तब ही कोई निर्णय होगा। जब कंकू बाई को कागज़ात दिखाए तो कंकू बाई ने उन्हें बताया कि बाड़े का पट्टा तो आपका ही है। उदय सिंह ने पास ही की दूसरी ज़मीन पर कब्ज़ा कर रखा था, उस ज़मीन पर वो केस जीत गया है। इन कागज़ों में बताया गया है कि कब्ज़ाशुदा ज़मीन उदय सिंह पुत्र देवी सिंह की है और पट्टाशुदा ज़मीन किशन सिंह की है।

फिर कमला बाई, हंजा बाई एवं कमला बाई के पुत्र रवि ने कहा कि हमें संगठन की मदद चाहिए, हम इस केस में अकेले कुछ नहीं कर पाएंगे। उदय सिंह बहुत रसूखदार

आदमी है। दिनांक 22 जनवरी 2016 को संगठन से कंकू देवी व छग्गी बाई कमला बाई के गांव गई साथ ही गांव कलालिया से भी संगठन की कुछ बहनों को साथ ले लिया। संगठन सदस्य जब ग्राम पंचायत में गए वहां पर सचिव था लेकिन सरपंच उपस्थित नहीं थी। तब सदस्यों ने सचिव से बात की और कहा कि आपने उदय सिंह को अनापत्ति प्रमाणपत्र (एन.ओ.सी.) दे दिया। लेकिन कमला बाई को क्यों नहीं दिया सचिव ने सरपंच से बात करने को कहा। सदस्यों ने सरपंच को बुलाया तो सरपंच का पति वहां आया और सदस्यों से उल्टी-सीधी बातें करने लगा और ज़मीन को उदय सिंह की बताने लगा। इस पर सदस्यों ने कहा कि यह आबादी की जगह है और सरपंच पंचायत के अंदर ही काम करते हैं तो सरपंच को उदय सिंह और कमला बाई दोनों को अनापत्ति प्रमाणपत्र (एन.ओ.सी.) देना चाहिए था। आप अभी चलो हम मौके पर जाकर ही बात करेंगे। फिर यहां से सदस्यों के साथ सचिव, सरपंच व वार्ड पंच मौके पर गए तो वहां काम चालू था। सदस्यों ने कमला बाई को कहा कि आप बताओ कि आपके बाड़े की जगह कहां तक है। उसी समय उदय सिंह कुछ लोगों को लेकर वहां आया। उसने एक फाईल दिखाते हुए कहा कि ये देखो केस हम जीत गए हैं। सदस्यों ने कहा कि आप दूसरी जगह पर जीते हो कमला बाई की जगह पर नहीं। इस पर उदय सिंह ने कहा कि हम सब जगह जीत गए हैं और कागज़ात दिखाए। फिर सदस्यों ने अजमेर आकर वकील से बात की, वकील ने सारी बात समझाई। उसने एक प्रार्थना पत्र बनाकर दिया और कहा कि आप थाने में जाओ। फिर दिनांक 23 जनवरी 2016 को एक सदस्य थाने में गई वहां पर कोई बात नहीं बनी। इसके पश्चात् सदस्यों ने तय किया कि अब गांव वालों को इकट्ठा किया जाएगा और वहीं फ़ैंसला करवाएंगे। दिनांक 24 जनवरी 2016 को ब्लॉक रायपुर में संगठन के लगभग 30 सदस्य और गांव वालों की उपस्थिति में मीटिंग की और सारी बात रखी। गांव वालों ने भी सदस्यों का साथ दिया और सारी सच्चाई सामने आ गई। फिर संगठन ने कहा कि अब न तुम्हारा वकील होगा न हमारा, हम अलग से वकील बुलाएंगे वो जो कहेगा वो मान्य होगा। लेकिन वो उदय सिंह मानने को तैयार नहीं हुआ। फिर पुलिस वालों ने भी समझाया और कहा कि सीधे-सीधे मान जाओ नहीं तो कल कमला बाई को थाने बुलवाकर उनका बयान लेंगे और आगे की कार्यवाही करेंगे। इसके बाद अगले दिन कमला बाई का थाने में बयान लिया गया। दिनांक 5 फरवरी 2016 को सभी बहनें पंचायत में गईं। वहां सरपंच व वार्ड पंच व गांव के अन्य लोग मौजूद थे। सदस्यों ने पूछा कि कमला बाई को अनापत्ति प्रमाणपत्र (एन.ओ.सी.) दिया या नहीं, तब कोई जवाब नहीं मिला तो सदस्यों ने सरपंच को पकड़ा और बोला कि अब क्या करना है, उसने कहा कि कोरम में तो कुछ नहीं हुआ। फिर क्या था सदस्यों ने संगठन की कुछ सदस्यों को बुलाया और दिनांक 6 फरवरी 2016 को गांव वालों की मदद से बाड़े की दीवार गिरा दी और कारीगरों को बुलाकर नई दीवार और कमरे की चुनाई करवाना शुरू कर दिया। बाउंड्री करा कर फाटक लगवा दिया गया। कमला बाई, कुछ गांव वाले और कुछ सदस्य वहीं पर पूरी रात रुके और संगठन के गीत गाते रहे, नारे लगाते रहे। सुबह पुलिस आई और संगठन की बहनों से कहा कि आपको थाने आना होगा। संगठन सदस्य थाने गए वहां सदस्यों ने अभी तक की सारी बात बताई और कागज़ात दिखाए तब थाने वालों ने उनसे कुछ नहीं कहा। अब कमला बाई उसके बाड़े में बने हुए मकान में ही रहती है। कमला बाई को उसका हक़ मिल गया था।

एकल नारी शक्ति संगठन राजस्थान की विधवा, पति से अलग तलाकशुदा व उम्रदराज अविवाहिता महिलाओं का संगठन है। संगठन के साथ 58,000 से भी अधिक एकल महिलायें जुड़ी हुई हैं।

शब्दः कमला भसीन, डिजाइनः मस्तराम

महिला सम्पत्ति अधिकार पर संगोष्ठी की एक झलक

मीनल

पितृसत्ता का मुकाबला करने के लिए महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों को सुरक्षित करना आवश्यक है। श्रम और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण, महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा और कई तरह के अन्याय पिछले कई दशकों से महिला आन्दोलनों की चिंता का विषय रहे हैं। ये मुद्दे सभी जाति, वर्ग, क्षेत्र और धर्म में महिलाओं को अलग-अलग तरह से या अक़्सर एक समान रूप में तकलीफ़ देते हैं। महिलाओं के विभिन्न समूहों को नियंत्रित करने वाले विभिन्न क़ानूनों का अस्तित्व जटिल और भेदभावपूर्ण है। ऐसे भेदभावपूर्ण क़ानून और पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक-सामाजिक मानदण्ड महिलाओं को सम्पत्ति अधिकार हासिल करने में बाधा उत्पन्न करते हैं।

इन असमानताओं को दूर करने और महिलाओं की भलाई के लिए और सम्पत्ति अधिकार के महत्व को मान्यता देने के उद्देश्य से 2017 में 29 और 30 मई को 'महिला सम्पत्ति अधिकार' पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में 37 संगठनों, भारत के विभिन्न यूनियनों और नेटवर्क के लगभग 61 लोगों ने भाग लिया। जहां इस मुद्दे पर गहन विचार-विमर्श किया गया। साथ ही इस अभियान को प्रतिबिम्बित करने और योजना बनाने की मांग की गई, जिसके माध्यम से महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों के कार्यक्रम को आगे ले जाया जा सके।

विख्यात नारीवादी अर्थशास्त्री बीना अग्रवाल ने महिला सम्पत्ति अधिकार के सन्दर्भ में एक ख़ाका (मानचित्र) प्रस्तुत किया। हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून में बदलाव की वकालत करने वालों में वे मुख्य भूमिका में थीं। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन हुआ। उन्होंने कहा, केवल स्वामित्व ही भूमि या सम्पत्ति पर महिलाओं के सम्पत्ति अधिकार को सुनिश्चित नहीं करता। इसलिए उन्होंने महिलाओं द्वारा सम्पत्ति संसाधनों

के प्रभावी स्वामित्व की मांग करने वाले एक दृश्य अभियान का सुझाव दिया। हमारे देश के शरियत अधिनियम और आदिवासी समुदायों के विभिन्न क़ानूनों के भेदभावपूर्ण प्रावधानों का ज़िक्र करते हुए कहा कि अभी भी पूरा होने को बहुत कुछ बचा है। बीना जी के प्रस्तुतिकरण के आधार पर एक चर्चा हुई। जिसमें अलग-अलग क्षेत्रों से आए लोगों ने इस मुद्दे पर अपने विचार साझा किए। महिलाओं की सम्पत्ति व संसाधनों तक सीमित पहुंच के कारणों और बाधाओं पर विचार सामने आए। यहां हमने सीखा कि हाशिए पर रहने वाले वर्गों की महिलाओं के लिए भूमि अधिकार, अनिवार्य रूप से जीविका चलाने के अधिकार से जुड़ा है, जैसा कि 'ऑल इण्डिया यूनियन ऑफ फॉरेस्ट वर्किंग पीपल' (ए.आई.यू.एफ.डब्ल्यू.पी.) में रोमा गौतम द्वारा उल्लेख किया गया है। एक आदिवासी महिला जो अपनी आजीविका (जंगल से फूल और लकड़ियां इकट्ठा करती है) के लिए जंगल जाती है यदि भूमि पर उसका क़ानूनी अधिकार नहीं होगा तो कैसे वह अपना जीवन चलाएगी? 'तटीय महिला नेटवर्क' ने एक अनोखी प्रस्तुति दी जिसमें यह बताया कि कैसे देश के अन्दर रहने वाले जल स्त्रोत उनकी आजीविका का साधन हैं। एसोसिएशन फॉर रूरल डेवलपमेंट ने साझा किया कि कैसे वे समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों, अनुसूचित जातियों की ज़रूरत को पूरा करते हैं और उनके नाम पर भूमि प्राप्त करने में उनका सहयोग करते हैं। एकल महिला अधिकार के राष्ट्रीय मंच ने विधवाओं की दुर्दशा समस्या को साझा किया। कैसे इन महिलाओं को दिवंगत पति की सम्पत्ति से बाहर रखा जाता है और उन्हें उनके परिवार की दया पर छोड़ दिया जाता है। इस तरह हमने लोगों के अधिकारों के लिए नव-उदारवादी आर्थिक प्रतिमानों के द्वारा सामने आने वाले खतरों के बारे में भी जाना।

'शिलांग टाइम्स' के संपादक पैट्रीसिया मुखिम ने खनन उद्योग द्वारा त्रिपुरा में ग्रामीण महिलाओं के विस्थापन पर बात की। AIUFWP (ए.आई.यू.एफ.डब्ल्यू.पी.) ने साझा किया कि कैसे निगमों द्वारा भूमि संग्रहण, जंगल अधिकार अधिनियम द्वारा दिए गए भूमि सुधार एजेंडे को आगे ले जाने में बाधा डालते हैं। इसी प्रकार नर्मदा बचाओ आन्दोलन के राहुल श्रीवास्तव ने बांध निर्माण के साथ-साथ बड़ी संख्या में महिलाओं के विस्थापन पर चर्चा की। इसके साथ ही कई प्रतिभागियों ने महिला किसानों की दुर्दशा पर बात की, यद्यपि भारतीय कृषि पूरी तरह महिला किसानों के श्रम पर निर्भर है लेकिन इन महिला किसानों का भूमि संसाधनों पर कोई अधिकार या नियंत्रण नहीं होता। गोरखपुर पर्यावरण एक्शन ग्रुप ने छोटे और सीमान्त किसानों के अधिकारों के लिए किए गए 'आरोह' अभियान के बारे में बताया। इस अभियान के लिए चर्चित वाक्य **'सौ में सत्तर काम हमारे, लिखो बही में नाम हमारे'** नारे के लिए सबने एक सुर में आवाज़ लगाई।

प्रतिभागियों ने ज़मीनी स्तर पर बदलाव के लिए अपनी रणनीतियों को भी साझा किया। जैसे मुम्बई की संस्था 'मासूम' ने संयुक्त सम्पत्ति अभियान 'घर दोनों का' की रणनीतियों को साझा किया। सभी ने पुरुषों द्वारा परिवार में महिलाओं के साथ अपने सम्पत्ति अधिकार बांटने की अनिच्छा और महिलाओं द्वारा अपने अधिकारों को न

मांग पाने के संकोच का उल्लेख किया। सभी ने इस मुद्दे को आगे ले जाने के लिए स्थानीय लोगों और सरकारी कर्मचारियों के संवेदनशील होने पर जोर दिया। साथ ही एक प्रभावी योजना बनाने का भी उल्लेख किया। वीडियो स्वयंसेवक (वॉलियन्टर) समूह के स्टेशन ने प्रचार के प्रभावी तरीकों पर प्रस्तुतिकरण किया और सुझाव दिया कि इस अभियान को सफ़ल बनाने के लिए शिक्षाविदों, कलाकारों और कार्यकलापों के तीन स्तम्भ बनाने चाहिए। अन्त में कमला भसीन ने इस अभियान की शुरूआत की जिसे सर्वसम्मति से नाम दिया गया।

महिला सम्पत्ति अधिकार अभियान (Property for her Campaign) कई चर्चाओं के बाद प्रतिभागियों को पांच समूहों में विभाजित किया गया। सम्पत्ति अभियान के तहत सामूहिक कार्यवाई के अवसरों के निर्माण हेतु रणनीति बनाई गई। कुछ सुझाव आए जिनमें संगोष्ठी में एकत्रित सूचनाओं को ऑनलाइन प्रचारित करना (हालांकि बाद में यह एक्शन एड और ब्रेक थ्रू द्वारा सोशल मीडिया के माध्यम से प्रचारित भी किया था)। साथ ही संबन्धित डाटा को प्राप्त करने के लिए सूचना के अधिकार (आर.टी.आई.) का प्रयोग करना, इस मुद्दे को कुछ मौकों जैसे महिला दिवस आदि से जोड़ना। क़िफ़ायती आवास और शरीयत अधिनियम को सुधारने हेतु नीति स्तर पर कार्यवाई को संभव करने के लिए प्रभावशाली कदम उठाने की आवश्यकता है।

बहुत ही ऊर्जा और उत्साह के साथ संगोष्ठी का समापन हुआ। ये दो दिन न भूलने वाले रहे जब विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक स्थान पर एकत्र हुए और महिला सम्पत्ति अधिकार पर एक अर्थपूर्ण चर्चा में सबने अपने विचारों को साझा किया। अनेक कीमती सुझाव भी आए। महिला सम्पत्ति अधिकार अभियान के उद्देश्यों को मज़बूत करने में ये दो दिन बेहद ख़ास और महत्वपूर्ण रहे।

अनुवादः **ममता पाठक**

—◆◆◆—

कविता

जायदाद औरतें भी पाएं

कमला भसीन

जायदाद औरतें भी पाएं,
तो बड़ा मज़ा आए।
आज़ाद औरतें हो जाएं,
तो बड़ा मज़ा आए।

संग मिलके अभियान चलाएं,
हक़ बराबर के सबको दिलाएं।
बिटिया मालिक बन जाए,
तो बड़ा मज़ा आए।
जायदाद औरतें भी पाएं
तो बड़ा मज़ा आए।

मोहताज बन के अब,
न हम जियेंगे।
न हाथ औरों के आगे फैलाएं,
हम भी पैसे कमाएं,
तो बड़ा मज़ा आए।
जायदाद अपनी बनाएं,
तो बड़ा मज़ा आए।

इतराती पैसों पे,
दुनिया ये सारी।
हम भी क्यों न,
अब ख़ूब कमाएं।
हम भी थोड़ा इतराएं,
तो बड़ा मज़ा आए।
जायदाद औरतें भी पाएं
तो बड़ा मज़ा आए।

मैंने ठाना है सम्पत्ति में हक़ पाना है

सुनीता

मेरा नाम सुनीता है, 32 साल की हूं। मैं मदनपुर खादर पुनर्वास कॉलोनी नई दिल्ली 110076 में अपने माता-पिता के घर रहती हूं। मेरी एक बेटी है जो कि 15 साल की है। मुझे अपने मायके में रहते हुए 15 साल हो गए हैं। मेरे साथ ससुराल में मेरे पति द्वारा और देवर के द्वारा यौन अत्याचार हुआ करता था। जिसे मैं सहन नहीं कर सकी और मुझे अपने मायके आना पड़ा। यहां आने के बाद, बहुत संघर्ष के बाद तलाक़ मिला। जिसमें बहुत जद्दोजहद करनी पड़ी। ससुराल की लड़ाई तो लड़ती गई और जीतती रही। अब मायके की बात कही जाए तो जब मैं मायके में आकर रहने लगी। कुछ साल बीते ही थे कि मेरे भाइयों को लगने लगा कि अब तो मैं घर में कब्ज़ा कर लूंगी। यही सोचकर मेरा भाई जो कि मुझसे छोटा है वह अक़्सर मेरे साथ लड़ता-झगड़ता और ये ख़ासकर बोलता कि तू तो मेरे घर में कब्ज़ा करके बैठी है, तू नागिन है घर को घेर कर बैठी है, अपनी बेटी को उठा अपने ससुराल जा। मैं कौन सी कम थी मैं भी बोली हां हूं मैं नागिन, अभी तो घेर कर बैठी ये सोच तेरा हिस्सा नहीं लिया। ऐसा झगड़ा अक़्सर होता यहां तक कि पापा और छोटा भाई भी कभी-कभार बोल देते कि चुप रहा कर जब देखो लड़ती रहती है, हिस्से की बोलती रहती है। भला मैं क्यों ना बोलूं? मैंने इस घर को बनाने में पैसा लगाया है। शुरूआत में जो कमाया इस घर को बनाने में लगा दिया, तो आप ही बताइए कैसे छोड़ दूं इस घर को। और छोडूं भी क्यों भला? पैसा और मेहनत लगाया है, इसके साथ ही इस घर की बेटी हूं तो हक़ ऐसे भी लूंगी। इसी दौरान मैंने अपना कमरा सही से रहने लायक बनाया इसमें भी मैंने खुद पैसा लगाया। मुझे किसी तरह की कोई मदद नहीं मिली। यहां तक कि अपने माता-पिता के साथ अपने कमरे में रहती हूं तो बड़ा भाई बोलता है— तू मेरे मां-बाप को अपने पास रखकर बहला-फुसला रही है ताकि घर तेरे नाम कर दें। उसको इतनी भी समझ नहीं कि उनका घर है उन्हें जहां रहना है वहीं रहेंगे, पर नहीं उसको लगता है मैं घर हड़प लूंगी, लेकिन मैं भला हड़पूंगी क्यों? मैं तो केवल अपना हक़ चाहती हूं, कि मेरा वाला एक फ्लोर मेरे नाम कर दें।

समाज में रहते हुए एक परिवार को ये समझना पड़ेगा कि बेटियों का हक़ भी है सम्पत्ति पर। हम बेटियों को बिना लड़े कुछ नहीं मिलता इसलिए हमें सम्पत्ति के अधिकारों के लिए भी लड़ना होगा। माना कि मायके की लड़ाई मुश्किल है पर नामुमकिन नहीं। मैं कभी भी हार नही मांनूगी। घर जितना भाईयों का है उतना मेरा भी। पिता भी बोलते है तुम सब लड़ते रहो मैं ही एक दिन घर को बेच-बाच कर चला जाऊंगा। घर की सत्ता में बैठे पुरुष को भी ये सोचना होगा कि ऐसे पीछा छुड़ाने से कुछ नहीं होगा, इससे बेहतर यह है कि वो भी जान जाए कि हम बेटियों का घर है, अब ये ना कहे केवल ससुराल ही तुम्हारा घर, वही तुम्हारी सम्पत्ति है। मैं तो अब कहती हूं—

मैंने ये ठाना है,
पिता की सम्पत्ति में हक़ पाना है।

जागोरी, नई दिल्ली

लड़ाई जारी है

पैतृक भूमि के लिए संघर्ष कर रही है रविता

यूसुफ बेग

रविता गौड पति जगदीश गौड उम्र 32 साल, निवासी गांधी ग्राम का विवाह 16 साल की ही उम्र में कर दिया गया था। रविता गौड का जन्म ग्राम कोटा गुंजापुर ग्राम, पंचायत जरधोबा तहसील व जिला पन्ना निवासी राम चरण गौड के परिवार में हुआ था। राम चरण पत्थर की ख़दानों में मज़दूरी का काम करता था, साथ में उसकी पत्नी एवं रविता की मां द्वारी बाई भी मज़दूरी करती थी। राम चरण अपने पिता का एक ही बेटा था और राम चरण की एक छोटी बहन सुम्मर, दोनों भाई बहन अपनी मां के ही साथ रहते थे। राम चरण ने अपनी छोटी बहन सुम्मर की शादी आदिवासी रीति-रिवाज़ के अनुसार ग्राम राम नगर पोस्ट अमानगंज जिला पन्ना में कर दी थी और वह अपने ससुराल चली गई थी। कुछ ही दिनों बाद रविता की बुआ सुम्मर अपने पति के साथ अपने मायके कोटा गुंजापुर में ही अपने भाई राम चरण के साथ रहने लगी। राम चरण के पास 4 एकड़ 20 जजीर भूमि है जो उनकी पैतृक भूमि है, जिसमें खेती कर अब दोनों भाई बहन गुजर बसर करने लगे। राम चरण पत्थर ख़दानों में काम करता था और जब रविता 6 माह की ही हुई थी तभी पिता राम चरण की मौत हो गई। अब रविता के पालन-पोषण की पूरी ज़िम्मेदारी उसकी मां द्वारी बाई के ऊपर ही आ गई। रविता की मां मजदूरी कर रविता का पालन-पोषण करने लगी और जब रविता की उम्र 14 साल की ही थी तो उसकी मां द्वारी बाई ने दूसरी शादी कर ली और अपने पति के साथ रहने लगी। रविता अपनी दादी दसूइया बाई के साथ रहने लगी। कुछ दिनों बाद रविता की दादी दसूइया बाई की भी मौत हो गई। गांव समुदाय ने मिलकर 16 साल की उम्र में ही रविता की शादी गांधीग्राम पंचायत जनकपुर निवासी जगदीश गौड के साथ कर दी और वह अपने पति के साथ ससुराल में ही रह रही है।

राम चरण एवं उसकी मां दसूइया बाई की मृत्यु के बाद एवं द्वारी बाई की दूसरी शादी और रविता की शादी के बाद रविता की बुआ सुम्मर बाई गौड पति पूरन गौड ने पुश्तैनी चल-अचल सम्पत्ति पर पूर्ण रूप से कब्ज़ा कर लिया।

रविता ने जब अपनी पैतृक चल अचल सम्पत्ति में अपना हिस्सा मांगा तो उसकी बुआ ने हिस्सा देने से साफ़ इंकार कर दिया और झगड़ा करने पर आमादा हो गई, और झगड़ा करने लगी तो रविता ने अपनी इस चल-अचल सम्पत्ति के हक़ के लिए तहसील में दावा कर दिया जो 10 वर्षों से चल रहा है अभी जिसका कोई निराकरण नहीं हुआ है। ज़मीन का पुराना पट्टा रविता के पास है लेकिन उसकी बुआ ने उसकी ज़मीन का नया पट्टा बनवा लिया है।

रविता के परिवार में उसके पति और 4 पुत्री और 1 पुत्र है, रविता और उसके पति पत्थर एवं हीरा खदानों में मज़दूरी कर अपनी आजीविका चलाते हैं मगर हक़ की लड़ाई जारी है।

पृथ्वी ट्रस्ट पन्ना, मध्यप्रदेश

सुशीला अपने घर के साथः मजबूत इरादों से बना उसका ये कच्चा घर

मज़बूत इरादों से बना एक कच्चा घर

अर्चना

सुशीला मरावी, म.प्र. के मण्डला जिले, मवई ब्लॉक की रहने वाली एक खुशगवार व्यक्तित्व की आदिवासी महिला है। सुशीला की ज़िंदगी बचपन से इम्तहानों से भरी रही। सुशीला जब डेढ़ साल की थी तभी उसकी मां गुजर गई, उनके बाद सुशीला की बुआ ने उसको पाला। कुछ समय बाद पिता ने दूसरी शादी कर ली, जिनसे उसके तीन और भाई-बहन हुए। सुशीला, परिवार का अहम हिस्सा नहीं बन पाई और बहुत कम उम्र से ही उसने मज़दूरी करते हुए अपनी ज़रूरतों को खुद ही पूरा करना शुरू कर दिया। इन मज़बूरियों की वजह से वो ज़्यादा नहीं पढ़ पाई। मज़दूरी करते समय ही सुशीला की मुलाकात राजेन्द्र मरावी से हुई और बाद में दोनों ने साथ रहने का निर्णय लेते हुए शादी कर ली। सुशीला इस निर्णय को खुशहाल ज़िंदगी की शुरूआत समझ रही थी परंतु उसे नहीं पता था कि समस्याओं ने अभी उसका साथ नहीं छोड़ा है। शादी के बाद राजेंद्र का शराब का शौक और बढ़ गया और इसके चलते घर में पैसे की कमी होने लगी। धीरे-धीरे उसने सुशीला के साथ मार-पीट शुरू कर दी। इस तरह हिंसा सहना सुशीला के व्यवहार के विरुद्ध था। किसी तरह शादी के 13 साल तक सुशीला इन परिस्थितियों को बदलने में लगी रही परंतु एक समय में उसे लगा कि अब वो इसे और नहीं सह सकती। एक दिन उसने फ़ैंसला किया और अपने दोनों बच्चों के साथ ससुराल से निकल कर सुशीला अपनी बुआ के पास, अपने गांव नेवसा में आकर रहने लगी और मज़दूरी कर बच्चों को पालने लगी। इसी बीच एक दिन उसका पति राजेन्द्र उसे वापस ले जाने आया पर इस बार सुशीला समझौता करने को तैयार न हुई। ऐसा पहले भी होता था और वो मान कर चली जाती थी। पर इस बार वो अपने निर्णय पर टिकी रही, उसके पति को उसका यूं दृढ़ रहना आहत कर गया और वो सुशीला की मर्जी के ख़िलाफ़ बड़े बेटे को साथ में ले गया।

मायके में आने के बाद, वो महिला संगठन से जुड़ी। स्वाभिमानी तो वो हमेशा से थी पर यूं संगठन की चर्चाओं ने उसके अन्दर की जुझारू महिला को और निखार दिया।

सुशीला के अनुसार महिलाओं के हक़ और अधिकार के एक प्रशिक्षण में भाग लेकर घर लौटने के बाद वो 2 दिन तक सोचती रही। उसे लगा अगर लड़की को भी लड़के के समान बराबर का हक़ है फिर क्यों इसी गांव में क्यों वो यूं बुआ के एहसान पर जी रही है और इधर-उधर मज़दूरी करने के लिए मजबूर है दूसरी तरफ मेरे दोनों भाई पिता की सम्पत्ति और किसानी पर जी रहे हैं। ये तो अन्याय है।

उसने अपने व बच्चों के साथ सम्मान की ज़िंदगी की शुरूआत करने की सोची और स्वयं के मकान का सपना लिए पिता से ज़मीन का हिस्सा मांगने गई। उसके पिता से जवाब नहीं मिलने पर उसने बस उन्हें सुना दिया कि वो ज़मीन का एक टुकड़ा ले रही है। पिता-भाई चुप रहे। अगले ही दिन उसने अकेले ही नींव की खुदाई शुरू की। धीरे-धीरे दो कमरों के मकान बनाने के लिए ज़रूरी सामान इकट्ठा किया। दीवार के लिए कुछ पैसों से मज़दूरों को ठेका दिया और अंदर का काम खुद किया। नदी के किनारे से, स्वयं रेत व मिट्टी 2 किलोमीटर दूर से अपने सिर पर ढ़ोकर लाई और अपने मज़बूत इरादों और मेहनत से, खुद के लिए एक कच्चा मगर अपना घर बनाया।

उसकी चुनौतियां अभी ख़त्म नहीं हुई। सुशीला जब मजदूरी करने गई हुई थी तब एक बार फिर उसका पति आया और इस बार उसके छोटे बेटे को भी साथ ले गया। सुशीला अपने बेटे से अलग होकर फिर टूट सी गयी थी मगर उसने खुद को सम्भाला।

उसने रोज़ी रोटी के लिए बाड़ी में टमाटर लगाये और बेचे। साथ ही में उधार पर सिलाई मशीन ख़रीदी और सीखने के लिए उसने सिले हुए कपडों की सिलाई उधेड़कर, काटना एवं नया कपड़ा सिलना सीखा और अब हर रोज़ लगभग सौ रुपए रोज़ सिलाई से कमा रही है।

वो तय कर चुकी है कि अब पीछे नहीं मुड़ना। बहुत कुछ खोया है पर वो जो पाया है वो कम कीमती नहीं है। अब एक नया सपना है उसकी आंखो में बाकी महिलाओं को भी उनका ज़ायज़ हक़ दिलाना है। वो समझ चुकी है कि उसने बस एक छोटी सी ज़मीन का टुकड़ा ही नहीं लिया बल्कि औरतों को कमतर मानती, उनके इंसानी हकों का दमन करती, इस समाज की सोच पर सवाल किया है। जिस दिन वो पहली बार ज़मीन पर नींव खोदकर जब अपने समूह में आई और उसने ये बात सभी औरतों को बतायी तो उसकी बात सुनकर समूह में एक ऐसी खुशी छायी जो उससे पहले उन्होंने कभी महसूस नहीं की थी। अन्य गांव वाले सुशीला को अच्छी औरत नहीं मानते हैं, लेकिन समूह की महिलाओं को, उसका घर उनके अधिकारों का एक 'स्मारक' सा प्यारा लगता है।

प्रदान (ग़ैर सरकारी संस्था)

वीडियो वॉलिन्टियर सर्वे

वीडियो वॉलिन्टियर एक ग़ैर सरकारी संस्था है, जिसने 2017 में 10 राज्यों के 7 शहरों में 280 लोगों के बीच महिला सम्पत्ति अधिकार के मुद्दे पर एक सर्वे किया। सर्वे में 51 प्रतिशत महिलाएं और 49 प्रतिशत पुरुष शामिल हुए। सर्वे में निम्नलिखित दो बातें मुख्य रूप से सामने आई।

प्रश्नः क्या आप अपनी बेटी, बहन, पत्नी को सम्पत्ति अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष करने को तैयार हैं?

↓

हां – 81%
नहीं – 10%
शायद – 9%

प्रश्नः क्या आपको विश्वास है कि आप सफल होंगे।

↓

हां – 66%
नहीं – 4%
पता नहीं – 30%

लड़ी लड़ाई फिर जीत पाई

नोरती

मेरा नाम नोरती है और मैं राजस्थान की रहने वाली हूं। मेरा बचपन बहुत कठिनाइयों में बीता। पिता शराब का नशा करते थे और अपनी सारी कमाई नशा करने में खर्च कर देते थे। मेरी और मेरे भाई की पढ़ाई भी छुड़वा दी गई क्योंकि फ़ीस देने के पैसे नहीं होते थे। मेरे लिए तो पिताजी ये भी कहते लड़की है क्या करेगी पढ़कर और जितना पढ़ेगी उतना दहेज देना पड़ेगा। उन्होंने मेरी शादी करने का फ़रमान सुना दिया। समाज के ठेकेदार भी हां में हां मिलाने लगे। वे लोग जिन्होंने पिता की नशे की बुरी आदत पर चुप्पी साध रखी थी और कभी हमारी मदद के लिए आगे नहीं आए, अब लड़का ढूंढने के काम में बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। मेरी शादी करवा दी गई यह कहकर कि लड़का दुकान का मालिक है।

मैं जब ससुराल पहुंची तब मुझे पता लगा कि यह लड़का जो अब मेरा पति था, वो दुकान का मालिक नहीं बल्कि नौकर था। जो मेहनत करने के बजाए मेरे पिता की ही तरह शराब के नशे में पड़ा रहता। मुझे कहीं आना-जाना होता तो मैं सास से पैसे मांगती थी। सास भी अक़्सर ऐसे ताने मारती थी कि मन दुःखी हो जाता था। मैं रोती थी कि आखिर मेरे पिता ने यह क्या कर दिया पहले मुझे अपना बोझ समझा और अब मैं सास-ससुर पर बोझ थी क्योंकि उनका बेटा निकम्मा था। विरोध करने पर मेरी पिटाई शुरू हो गई। मैं पूरे दिन घर के कामों में लगी रहती फिर भी परिवार में हर व्यक्ति मेरे साथ बुरा व्यवहार करता। मेरे ससुराल के घर के सामने 80 साल के एक अंकल जी रहते थे मुझसे कहते यहां रहोगी तो मर जाओगी। मुझे उनकी बात समझ नहीं आती थी।

एक दिन मुझे 'जागोरी' संस्था के लोग मिले, उन्होंने मुझे बताया यह हिंसा है और हिंसा को सहना हिंसा को बढ़ावा देना है। मैं जितना विरोध करती मेरे साथ उतनी ज़्यादा हिंसा होती। ससुराल में पति, ससुर, देवर सभी मेरे साथ मारपीट करते। फिर मैंने तय कर लिया कि 'अब मैं यह सब सहन नहीं करूंगी।' मैंने ससुराल छोड़ दिया, वापस माता-पिता के घर आ गई। लेकिन यहां भी मां-पिता, परिवार, समाज सबने कहना शुरू कर दिया। यह तुम्हारा घर नहीं, अब ससुराल ही तुम्हारा घर है। लगातार मुझे समझाने का सिलसिला चलता रहा। संस्था द्वारा मेरी काउंसलिंग (परामर्श, विचार-विमर्श) की गई। मैं बहुत उलझन में थी कि न माता-पिता का घर मेरा, न ससुराल का घर मेरा तो मेरा घर है कहां? घर, परिवार, समाज के तानों ने मुझे झकझोर दिया। मैंने भी ठान लिया कि मैं पराई कैसे हुई? जब माता-पिता ने भाई और मुझे दोनों को जन्म दिया है और अगर ये घर भाई का है तो मेरा भी है। इन सबके बीच मेरा एक बेटा भी हो गया। संघर्ष अब भी जारी था ससुराल का भी मायके का भी। लेकिन आखिरकार मेरी हिम्मत के आगे पिता को स्वीकारना पड़ा कि हां घर दोनों का है। अब एक ही घर में भाई-बहन दोनों का परिवार रहता है। नीचे मेरा भाई और उसका परिवार और पहली मंजिल पर मैं और मेरा बेटा। अब मैं निश्चिंत होकर अपने बेटे की परवरिश कर रही हूं और किसी पर बोझ नहीं हूं। लड़कर ही सही लेकिन मुझे मेरा हक़ मिला।

अपने जीवन के अनुभव से मैं कह सकती हूं अब माता-पिता को सोचना होगा।

घर बेटा-बेटी दोनों का,
अधिकार बराबर दोनों का।

जागोरी, नई दिल्ली

क्या किया जाना चाहिए?

बीना अग्रवाल

औरतों के भूमि अधिकारों को प्राप्त करने में रुकावटें बड़ी गहरी हैं। उन्हें दूर करने के लिए क्या किया जाना चाहिए? यह सोचना बहुत ज़रूरी है। भूमि तथा रोज़गार मामले में जेंडर समानता लाने के लिए बीना अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'क्या हम किसान नहीं' में कम से कम कुछ स्तरों पर बदलाव लाने की बात कही है, धारणात्मक, अनुभवात्मक, सामाजिक, संस्थागत और ढांचागत। इसको हम निम्नलिखित रूप में विस्तार से समझ सकते हैं:

निजी भूमि पर औरतों के दावों की बेहतरी के लिए–

1. उत्तराधिकार क़ानूनों में जेंडर समानता।
2. क़ानूनी जानकारी तथा क़ानूनी सहयोग सेवाएं।
3. ग्राम स्तर पर औरतों के हिस्से को दर्ज करना।
4. प्रभावी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था सहित, औरतों के लिए परिवार के बाहर से सामाजिक तथा आर्थिक सहयोग।
5. सामाजिक रवैये में बदलाव।

सार्वजनिक भूमि तक औरतों की पहुंच की बेहतरी के लिए–

सार्वजनिक भूमि वितरण में जेंडर समानता

1. "लैंड रिफॉर्म" (भूमि सुधार) योजनाएं।
2. पुनर्वास योजनाएं।
3. अन्य योजनाएं, जैसे निर्धनता निवारण कार्यक्रम के तहत बनी योजनाएं।

बाज़ार में औरतों की भूमि तक पहुंच की बेहतरी के लिए–

1. पट्टे पर भूमि लेने या खरीदने के लिए कम ब्याज़ पर ऋण सुविधा।
2. समूह बनाकर पट्टे पर भूमि लेना या खरीदना तथा ऐसी ज़मीन पर सामूहिक काश्तकारी।

औरतों की काश्तकारी प्रयत्नों को टिकाऊ बनाने के लिए–

1. महिला किसानों के लिए कृषि प्रसार सेवाएं तथा अन्य ढांचागत सहयोग।
2. पूंजीगत उपकरणों तथा सहकारी विपणन में सामूहिक रूप से पूंजी लगाना तथा सबके संसाधनों का साझा एकत्रण।
3. गांव के फ़ैसले लेने वाली इकाइयों में औरतों की प्रभावशाली उपस्थिति।
4. संचार माध्यमों तथा शिक्षा संस्थाओं आदि के ज़रिए जेंडर संवेदनशीलता बढ़ाने की कोशिशें ताकि सामाजिक तौर-तरीके और सोच बदल सकें।

पुस्तक साभार: 'क्या हम किसान नहीं'
लेखिका- ***बीना अग्रवाल***

मैं अपनी बेटी को अपनी सम्पत्ति का समान हिस्सा छोड़ने की प्रतिज्ञा करती/करता हूं।

आरती पांडेय

एक लड़की के रूप में जन्म लेने के कारण मुझे अपने संयुक्त परिवार में भेदभाव का सामना करना पड़ा। सौभाग्य से, मेरे पिता एक प्रगतिशील व्यक्ति थे, जिन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मैं शिक्षित और आत्म निर्भर बनूँ। लेकिन सभी लड़कियां मुझ जैसी भाग्यशाली नहीं होती हैं। भारत में लाखों लड़कियों के साथ भेदभाव होता है और उनका दुरुपयोग किया जाता है। उनकी छोटी उम्र में शादी कर दी जाती है, वे शिक्षित नहीं होती और उनमें से कई लड़कियों को जन्म लेने से पहले ही मार दिया जाता है।

इसका कारण यह है कि हमारे समाज में लड़कियों को बोझ के रूप में देखा जाता है। परिवार में किसी प्रकार की सम्पत्ति या रुपया-पैसा लड़कियों को सहयोग या सम्पत्ति रूप में नहीं दिया जाता। लोग सोचते हैं कि अपनी बेटी को दहेज देना ही पर्याप्त है, लेकिन यह दहेज लड़कियों द्वारा नहीं बल्कि उनके पति और ससुराल के सदस्यों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके अलावा, दहेज उसके परिवार (माता-पिता) की कुल सम्पत्ति के मूल्य का केवल एक अंश मात्र होता है। अतः एक मज़बूत वित्तीय सुरक्षा के बिना, बेटियों को निडर, मज़बूत, और स्वतंत्र व्यक्तित्व (महिलाओं) के रूप में कैसे विकसित करेंगे? कोई महिला एक अपमानजनक रिश्ते से कैसे दूर जा सकती है, अपनी आजीविका कैसे कमा सकती है, अगर उसके पास कोई वित्तीय सुरक्षा ही नहीं है?

हमारे घर एक बेटी का जन्म हुआ। मेरे पति और मुझे मेरी बेटी, मीठी (अनुभूति) एक आशीर्वाद के रूप में मिली। वह हमारे जीवन का प्यार है। हम चाहते हैं कि हम हमारी बेटी को वित्तीय सहयोग करें ताकि वह सशक्त और स्वतंत्र बने। यही कारण है कि हमने अपनी सम्पत्ति को बेटी को देने का वचन दिया है। हमारे पास बहुत अधिक सम्पत्ति नहीं है, लेकिन हमारे पास जितना है उससे हम मीठी को दिखाएंगे कि हमारा प्यार और सहयोग हमेशा उसके साथ रहेगा। उसके नाम सम्पत्ति छोड़कर, हम जानते हैं कि हम उसके बेहतर भविष्य का समर्थन कर रहे हैं, और साथ ही उसके बच्चों और समाज के लिए बेहतर कल पीछे छोड़ रहे हैं। जब महिलाओं के पास सम्पत्ति होती है, तो उन्हें हर तरह से लाभ मिलता है। मेरे पति और मैं इस तरह सोचने वाले अकेले नहीं हैं। हम जानते हैं कि आप भी खुद, अपनी बहनों और अपनी बेटियों के बारे में उसी तरह महसूस करते होंगे। यही कारण है कि हम आपको हमारी प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने के लिए कह रहे हैं।

यदि आप माता या पिता हैं, तो इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करें और अपनी बेटी को अपनी सम्पत्ति में बराबर हिस्सा देने का वादा करें। यदि आप एक भाई हैं, तो अपनी बहन के साथ अपने सम्पत्ति के अधिकारों की मांग करने के लिए खड़े रहें। यदि आप एक महिला हैं, तो अपनी समान हिस्सेदारी मांगने के लिए प्रतिबद्धता के साथ यह प्रतिज्ञा ले लें। दुनिया को दिखाएं कि भारत बदल रहा है और यह सुनिश्चित करने के लिए एक विशाल आंदोलन उठाएं कि भारत की बेटियों को समर्थन मिल रहा है और वह सशक्त हो रहीं हैं।

(आरती पांडेय ने बेटी के सम्पत्ति अधिकार के मुद्दे पर भारत में सोशल मीडिया पर एक प्रतिज्ञा हस्ताक्षर अभियान चलाया, जिसे पूरे देश में सराहना मिली। आरम्भ में इस हस्ताक्षर अभियान पर 2,869 हस्ताक्षर किए गये जिसे 5,000 के ऊपर ले जाने का लक्ष्य था।

आरती पांडेय, *मध्य प्रदेश 'बिटिया', संस्था की सह-संस्थापक और सचिव हैं।*

अनुवादः **ममता पाठक**

पुस्तक "ससुराल से नैहर तक"

लेखिकाः रोमा

पृष्ठ : 40

प्रकाशक : जागोरी, 2009

बी-114, शिवालिक मालवीय नगर,

नई दिल्ली 110017

प्रस्तुत पुस्तक उत्तर प्रदेश के सोनभद्र चन्दौली एवं मिर्ज़ापुर ज़िले के कैमूर अंचल की महिलाओं के भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के संघर्ष का संक्षिप्त लेकिन पैनी दृष्टि के साथ वर्णन करती है। पुस्तक में सोनांचल क्षेत्र के इस आन्दोलन और वनों पर निर्भर रहने वाले भूमिहीन, खेतीहर मज़दूरों के संघर्ष का सजीव चित्रण है, जिसने शासक वर्ग को यह संदेश दिया कि प्राकृतिक संसाधनों पर केवल उन्हीं का हक़ है, जो कि उन पर निर्भर हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में ही भूमिका और परिचय के अन्तर्गत लेखिका ने इसका नाम "ससुराल से नैहर तक" रखने का कारण बताते हुए इस पर प्रकाश डाला कि इस आन्दोलन की महिलाओं ने अनेक बंदिशों के बावजूद अपने मायके और अन्य रिश्तेदारों के गांवों में जाकर जल, जंगल, ज़मीन व संसाधनों पर अपने हक़ की बातें करना शुरू कर, इस आन्दोलन को आधार प्रदान किया। इसी का परिणाम है कि इतने पिछड़े इलाके में गांव की अशिक्षित महिलाओं द्वारा दबंगों, माफ़ियाओं, उच्चजातियों, सामंतों, वनविभाग एवं पुलिस विभाग व पितृसत्तात्मक समाज के उत्पीड़न का मुकाबला, भूमि के दखल से करते हुए इस क्षेत्र की महिलाओं के नेतृत्व में छः गांवों की 15,000 एकड़ से भी ऊपर खाली पड़ी भूमि में दखल कर उसको अपने नियंत्रण में ले लिया। पुस्तक में स्थानीय जनसंगठन "कैमूर क्षेत्र मज़दूर महिला किसान संघर्ष समिति" के संघर्ष द्वारा दिखाया गया है कि "सामाजिक बदलाव का दूसरा नाम ही उत्पादन संबंधों में बुनियादी बदलाव को लाना है जिससे उत्पादन शक्तियां आज़ाद हों और उत्पीड़न की व्यवस्था समाप्त हो।"

इस आन्दोलन का एक उल्लेखनीय पक्ष यह था कि ये महिलाएं भूमि को निजी स्वामित्व या सम्पत्ति के रूप में नहीं देख रही थी बल्कि इसे जीविका के साधन के रूप में देखा गया, यह दृष्टिकोण महिला एवं भू-अधिकारों में वर्तमान समय में चल रही बहस की दृष्टि से सर्वदा नवीन और प्रगतिशील क़दम था। इस आन्दोलन की एक अन्य महत्वपूर्ण देन थी/है कि इसने यह सीख दी कि निर्धन, भूमिहीन महिलाओं की भूमि के रूप में भविष्यनिधि तभी सुरक्षित रह सकती है, जब तक यह भूमि सामूहिक स्वामित्व में रहेगी। साथ ही यह तय किया गया कि आन्दोलन के माध्यम से दखल और प्राप्त की गई भूमि महिलाओं के नियंत्रण में रहेगी। पुस्तक इस बात का सिलसिलेवार तरीके से विवरण देती है कि किस प्रकार बसौली गांव से आरम्भ हुआ यह संघर्ष दरमा, रामगढ़कोच, कोदवनीयां बोम, जोखखाड, सतद्वारी, झिरगाडडी, परासपानी, धूमा और हरनाकछार जैसे गांवों में "जो ज़मीन सरकारी है वो ज़मीन हमारी है" के नारे के साथ सफलतापूर्वक आगे बड़ा। आन्दोलन के इस सतत् संघर्ष में जहां शोषक वर्ग, पुलिस और वन विभाग ने अनेक प्रयासों से कमज़ोर

करने या दबाने का प्रयास किया और साथ ही अनेक बार ऐसा लगा कि स्थानीय आन्तरिक मतभेदों के कारण यह आन्दोलन कमज़ोर पड़ सकता है। लेकिन संगठन के अन्दर वाद-विवाद थे, उसे भी संगठन द्वारा गंभीरता से लिया गया और इसके निपटारे के लिए अनेक सदस्यों की टीम का गठन किया गया और संगठन के अन्दर के मनमुटाव को संस्थागत तरीके से सुलझाने का प्रयास किया गया।

पुस्तक में इस आन्दोलन के आर्थिक परिणाम के अतिरिक्त महिलाओं और उनके परिवार के अंतर्गत सामाजिक संबंधों में क्या बदलाव आए, इस पर भी एक गहन दृष्टि डाली है। इसके अनुसार जो महिलाएं आन्दोलन में शामिल हुई उन्होंने अपने परिवार, रिश्तेदार एवं गांव में एक सम्मानजनक स्थान बनाया। साथ ही आन्दोलन में जुड़ने के कारण इनके पारिवारिक विवादों में बहुत कमी आई, और जो छोटे-मोटे विवाद प्रायः थाने ले जाए जाते थे, वो गांव के स्तर पर ही निपटाए जाने लगे। परिवार में महिलाओं की सुरक्षा बढ़ी, और भूमि और सम्पत्ति पर महिलाओं के सामूहिक नियंत्रण को इस समुदाय के अधिकांश पुरुषों ने भी स्वीकार किया। संगठन का सर्वाधिक लाभ गांव की निर्बल, असहाय व विधवा महिलाओं को हुआ। जिन्हें संगठन की ओर से विशेष सहयोग एवं संरक्षण प्राप्त हुआ। महिलाओं को उनके पतियों द्वारा छोड़ने के मामले में कमी आई। यहां तक कि यह भी निर्णय लिया गया कि लड़कियों का विवाह वहीं किया जाए जहां संगठन हों, जिससे उन्हें संगठन का संरक्षण भी मिले और वो संगठन की सदस्य भी रह सकें।

पुस्तक की सहज, सरल, भाषा ने इस संघर्ष को आत्मीयता प्रदान की। जिससे प्रत्येक वर्ग की महिला वनाधिकार के लिए हुए इस संघर्ष को महसूस कर सकती है। पुस्तक में प्रस्तुत चित्रों/फोटो ने इसे और भी सजीव रूप दिया है। यदि कहा जाए कि विभिन्न तथ्यों, आंकड़ों और प्रस्तुतिकरण ने पुस्तक को बेहद आकर्षक और पठनीय बनाया है तो यह गलत न होगा। इस प्रकार "ससुराल से नैहर तक" महिलाओं के भूमि पर अधिकारों के संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज़ है। ज़िले अंचल के गांवों में इस आन्दोलन के विकास के साथ-साथ इस आन्दोलन के आर्थिक, सामाजिक प्रभावों का भी विश्लेषणात्मक मूल्यांकन किया गया है। अन्त में 'ससुराल से नैहर तक' पुस्तक का अध्ययन अपने संक्षिप्त कलेवार के बावजूद एक नए महिला सशक्तिकरण को जन्म देने का सहजता से आधार प्रदान करता है।

लेखकः **डॉ. शरद कुमार पाण्डेय**
एन.सी.आर.टी., नई दिल्ली

इनकी आवाज़ें हमेशा याद आएगीं

हमारी साथी रजनी तिलक (1958-2018) दलित नारीवादी आन्दोलन की एक सशक्त आवाज थी। वे बामसेफ, दलित पैंथर, अखिल भारतीय आंगनवाड़ी वर्कर एंड हेल्पर यूनियन, नेशनल फेडरेशन फॉर दलित विमेन, दलित लेखक संघ आदि विभिन्न संगठनों की कर्मठ कार्यकर्ता रही।

राजिन्दर सच्चर (22 दिसम्बर 1923 - 20 अप्रैल 2018) दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश थे। वे भारत सरकार द्वारा वर्ष 2005 में भारत के मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति का आकंलन करने के लिए गठित 'सच्चर समिति' के अध्यक्ष थे। इस मुद्दे पर उनकी रिपोर्ट को सच्चर समिति रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है।

मकाम
Makaam
महिलाओं
को
किसान का दर्जा
देने के लिए
हमें और कितने
प्रमाण चाहिए
मेरी
पहचान–
मैं हूं एक
किसान
महिला किसान अधिकार मंच
visit: www.makaam.in
Contact: mahilakisan.makaam@gmail.com

क्या आप
जानते है?
74%
26%
भारत में
ग्रामीण महिला
कामगारों का
74% से अधिक हिस्सा
खेती व्यवसाय में है।

महिला सम्पति नही है,
बल्कि महिला को ...
सम्पति का अधिकार है।
मकाम
Makaam
महिला किसान अधिकार मंच
www.makaam.in
mahilakisan.makaam@gmail.com
भारत में महिलाओं के एक बड़े तबके को कानूनी तौर से सम्पति
का बराबर अधिकार है। पर इस कानून का सख्ती से पालन
नही किया जा रहा है। हमारे पास जानकारी ही नही है कि कितनी
जमीन पर महिलाओं का मालिकाना हक है और न ही
सरकार के पास ये आंकड़े रखे जा रहे है।

कन्या का दान क्यों करें?
कन्या को संपत्ति दान दें!

Words by Kamla Bhasin. Designed by Kruttika Susarla

#PROPERTYFORHER